* श्रीगौराङ्गो विजयतेतराम् *

पञ्चमपुरुषार्थ

[गोपीगीतरहस्य]

लेखिका

चम्पकमञ्जरी राधादासी

प्रकाशक

श्री अमीरचन्द्र मांगलिक

सदर बाजार, आगरा

शीर्ष पूर्णिमा
त २०३३

मूल्य :
श्रीराधाकृष्णचरणकमलप्रेम

पुस्तक का सर्वाधिकार मुद्रक के अधीन सुरक्षित है ।

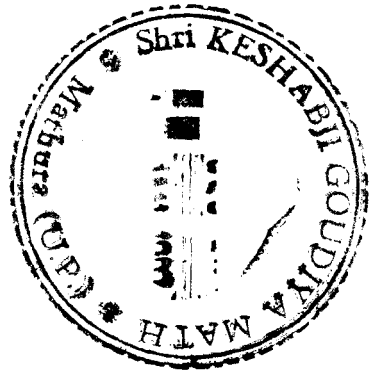

समर्पणम्

श्रीकृष्णचैतन्यचरणपरमभक्तानां
श्रीगोविन्दकुण्डवृन्दावननिवासिनां
श्रीबाबादामोदरदासानां श्रीचरणकमलेषु
चम्पकमञ्जर्या राधादास्या
सादरं सविनयं समर्प्यतेऽयं
पञ्चमपुरुषार्थपुष्पाञ्जलिः ।

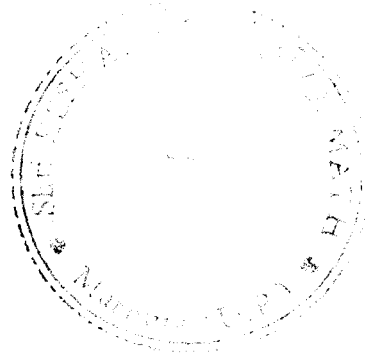

प्राक्कथन

श्री लेखिका चम्पकमञ्जरी राधादासी द्वारा प्रस्तुत **पञ्चमपुरुषार्थ** [गोपी गीति-रहस्य] का गम्भीर दृष्टि से अपनी स्वल्प बुद्धि के अनुसार पूर्णरूपेण अवलोकन किया। वैसे पञ्चमपुरुषार्थ का पूर्ण विवेचन यत्र तत्र श्रीगौराङ्ग माध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय के बोधगम्य ग्रन्थों में प्राप्य है; किन्तु "रासपञ्चाध्यायी के गोपी-गीत" द्वारा पञ्चमपुरुषार्थ का वास्तविक शृङ्खलाबद्ध विवेचन कहीं नहीं मिलता है। अतएव लेखिका महोदया ने इस ओर लेखिनी उठाने का प्रयत्न किया है। मेरी सम्मति के अनुसार लेखिका इस प्रस्तुत **पञ्चमपुरुषार्थ** के लिखने में पूर्ण सफलीभूत हुई हैं।

इसमें जो कुछ लिखा गया है, वह सब एक भक्त हृदय के अनुभूत हृदयोद्गार के रूप में समुद्गत है। जो स्वान्तः सुखाय लिखा गया है।

प्रस्तुत पुस्तक से भक्तवर विद्वद्वृन्द एवं साधारण श्रीगौराङ्गचरण चञ्चरीक भक्तप्रवर भी पूर्ण लाभान्वित होंगे; ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

तात्त्विक साम्प्रदायिक सैद्धान्तिक समस्याओं पर अनुभूति पूर्ण प्रकाश डाला गया है। इससे लेखिका के गम्भीर अध्ययन् एवं विचारशीलता का परिचय मिलता है। भक्त हृदय की भाषा सरल एवं सुबोध है। इस शृङ्खलाबद्ध अनुरागत्मिका श्रीकृष्ण चैतन्य गौराङ्गचरणभक्तिधारा की पूर्ति होगी।

पुस्तक विद्यार्थियों, साधारण गृहस्थों, भक्तप्रवर साधुवृन्द एवं पञ्चमपुरुषार्थ प्रेमीजनों को भक्ति ज्ञानार्जन की पिपासा को शान्त करने के लिये पूर्ण उपयोगी सिद्ध होगी।

भगवान् श्रीकृष्ण के आलोचक कृष्णकालीन समय से चले आ रहे हैं। जिज्ञासु विद्वज्जन बन्धुओं से एकमात्र निवेदन है कि वे इस पुस्तिका का अध्ययन एवं अनुकरण शुद्ध एव शान्तचित्त से ही करें।

पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण में जिन-जिन महानुभावों ने गुप्त आर्थिक सहयोग दिया, उन सभी को हार्दिक अनेक शुभाशीर्वाद।

विनीत

शुक्लोपाह्व रामनारायण शर्मा

भूमिका

।। श्री श्री राधा गोविन्दौ जयताम् ।।

* श्री श्रीगौरहरिर्जयति *

वन्दे गुरूनीशभक्तानीशमीशावतारकान् ।
तत्प्रकाशांश्च तच्छक्तीः कृष्णचैतन्यसंज्ञकम् ।।

श्री दीक्षा गुरुदेव—श्री शिक्षक गुरुदेव गणों, समस्त वैष्णव भक्त गणों की—ईश्वर के समस्त अवतारों की—श्री श्रीराधाकृष्ण प्रकाश की—ह्लादिनी शक्ति की तथा श्रीराधाकृष्ण सम्मिलित अवतार श्रीकृष्ण चैतन्य की, मैं वन्दना करता हूँ ।।

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्य—नित्यानन्दो सहोदितौ ।
गौड़ोदये पुष्पवन्तौ चित्रौ शन्दौ तमोनुदौ ।।

गौड़ देश उदयाचल पर आश्चर्यमय सूर्य तथा चन्द्र के समान एक ही समय पर प्रकट होने वाले—समस्त अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट करने वाले—परम मङ्गल-दाता श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्री नित्यानन्द के कमल चरणों में मैं वन्दना करता हूँ ।

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रु माधः श्रीमद्रत्नागार सिंहासनस्थौ ।
श्रीमद्राधा—श्रीलगोविन्ददेवौ प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ।।

परम दिव्य धाम (श्रीवन) श्रीवृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे मणिमय मंदिर में सुन्दर रत्नजटित सिंहासन पर जो विराजमान हैं तथा प्रिय सखीवृन्द जिनकी सेवा में निरन्तर तत्पर हैं—उन श्री श्रीराधागोविन्द जी के कमल चरणों का मैं स्मरण करता हूँ ।।

रासपंचाध्यायी के गोपिका गीतों के तात्त्विक भाव लिखने का प्रयास स्वसुख-हेतु एवं प्रेमी भक्तों की सेवा हेतु प्रयास किया गया है। इस प्रकार का प्रयास मुझ अज्ञ द्वारा वंचना मात्र ही है। मैं अति अज्ञानी होने के कारण सही भावों को प्रकट करने में नितान्त असमर्थ हूँ। वैष्णव चरणों की शरण ही मेरी गति हो।

श्री जू की कृपा बिना श्री जू के परिकरों की बात भी उठाना असम्भव है। अतः मुझे कुछ-कुछ भ्रान्ति होती है कि क्या इस प्रयास में श्री जू का आदेश निहित है ?

श्रवणे राधा नयने राधा
वदने राधा हृदये राधा
पुरतो राधा परतो राधा
मधुरा राधा मधुरा राधा ।।

× × ×

साधारणतया साधक के सामने सम्भवतः साधना में एक कठिनाई होती है। श्रीकृष्ण—श्रीराम या अन्य अवतार—ईश्वर—परमात्मा एवं भगवान् क्या एक ही हैं या पृथक्-पृथक् हैं ? अनादि, अखण्ड, पूर्णकाम, आत्माराम, अभेद, अजन्मा हैं। साधक की बुद्धि अभेद होनी चाहिये। अतः कुछ बातों का उल्लेख आवश्यक हो जाता है।

अनन्त जीव हैं। ये दो प्रकार के हैं—स्थावर (**वृक्षादि**) एवं जङ्गम (**मनुष्य, पशु-पक्षी आदि**)। जङ्गम जीवों में अनेक भेद हैं। पशु-पक्षी, जलचर, मछली आदि और स्थलचर मनुष्य आदि। इन जङ्गम जीवों में मनुष्य जाति जीव अति अल्प हैं। इस मनुष्य जाति जीव में एक संख्या ऐसी है जो वेदों को कतई नहीं मानती है (**यवन एवं बौद्ध आदि**)। इनको छोड़ कर मनुष्य जीव जाति की संख्या और कम हो जाती है। जो मनुष्य जाति जीव वेदों को मानते हैं, उनमें बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है, जो वेदों को मानते तो हैं परन्तु वेदानुकूल आचरण नहीं करते हैं। बल्कि वेदों के प्रतिकूल आचरण करते हैं। वे केवल वाणी से ही वेदों को मानते हैं। वेदों के विपरीत पापाचरण करते हैं; और धर्म को न जानते हैं, न धर्माचरण करते हैं।

अतः धर्माचरण करने वाले जीवों में अधिक संख्या कर्मों में निष्ठा रखने वाले जीवों की है। जो स्वर्गादि के सुखों को प्राप्त करके अपना सुख भोग चाहते हैं। उन कोटि कर्मनिष्ठ लोगों में कोई एक ज्ञानी मिल जाय वही श्रेष्ठ है। कर्म निष्ठा से किसी को भी ज्ञान निष्ठा प्राप्त नहीं होती है। कर्म निष्ठा से कोई साधक ज्ञानी नहीं बनता है। ज्ञानी जीव स्वर्गादि के सुखों को न चाह कर केवल सायुज्य मुक्ति चाहता है।

अतः उस मुक्ति को प्राप्त करने के लिये उसे भक्ति का आनुषङ्गिक भाव (**अनिवार्य रूप से साथ-साथ रखना**) का आचरण अवश्य-अवश्य करना पड़ता है। भक्ति की आनुषङ्गिकता के बिना ज्ञान किसी जीव को मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता है। कर्मनिष्ठा से ज्ञानी का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः कोटि-कोटि कर्मनिष्ठ जीव जहाँ हों वहाँ एक ज्ञानी भी निवास करता हो, वह श्रेष्ठ है।

चाहे कर्मनिष्ठ (**स्वर्गसुख वांछना वाले**) या ज्ञाननिष्ठ (**पाँचों प्रकार की मुक्ति चाहने वाले**) या योगनिष्ठ (**अष्ट सिद्धियों के चाहने वाले**) ये सभी अपने लिये कुछ न कुछ कामना करने वाले जीव हैं। अतः आत्म-सुख-वासना की पूर्त्ति के लिये उनका मन चंचल रहता है। अतः ऐसे जीव **अशान्त** कहलाते हैं। ऐसे जीवों की बुद्धि सदैव आत्म सुख में या अपने दुःखों की निवृत्ति में ही लगी रहती है। उनकी बुद्धि

में श्रीकृष्ण निष्ठा नहीं रहती है। अतः वे अशान्त हैं। **(सायुज्य मुक्ति प्राप्त करने वालों में संसार-यन्त्रणा से छुटकारा पाने की कामना तो रहती ही है)।**

इस प्रकार के कोटि-कोटि जीवन मुक्तों में कोई एक श्रीकृष्ण भक्त मिलता है। श्रीकृष्ण भक्त निष्काम अर्थात् अपने सुख की कामना रहित होता है। वही शान्त **(आत्मसुख के लिये चंचलता से रहित)** होता है। श्रीकृष्ण भक्ति के अतिरिक्त और जितने भी साधक हैं, वे समस्त मुक्ति एवं सिद्धियों को चाहने वाले हैं। अतः वे सकामी हैं। इसलिये वे सब अशान्त हैं।

श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं—श्री कृष्ण परमात्मा हैं—श्रीकृष्ण ईश्वर हैं—इस बुद्धि से साधकों की जो श्रीकृष्ण में निष्ठा है—वही शान्त रस का स्वरूप है—**(चतुर्भुज नारायण ही शान्त रस भक्तों के उपास्य हैं)।**

श्रीकृष्ण में बुद्धि की एकान्तिकी **निष्ठा** का नाम **शम** या **शान्ति** है। शम शब्द से श्रीकृष्ण में एकान्तिकी निष्ठा से तात्पर्य है। इन्द्रियों के संयम का नाम **दम** है। दुःखों को सहन करने का नाम **तितिक्षा** है। **जिह्वा** आदि के वेग को जीतने का नाम **धृति** है। अतः यह तीनों मिल कर शम यानी श्रीकृष्ण निष्ठा बनाते हैं। तृष्णा-त्याग श्रीकृष्ण निष्ठा का फल है।

॥ हे राधे चरणे विदेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हरः ॥

जब तक कृष्ण-निष्ठा नहीं होती है तब तक तृष्णा-त्याग भी असम्भव है।

नारायणपराःऽसर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः॥

नारायण भगवान के भक्त किसी से भी भयभीत नहीं होते हैं, क्योंकि वे स्वर्ग, नरक, एवं मुक्ति को बराबर ही समझते हैं। अतः कृष्ण भक्त इन तीनों को बराबर ही समझते हैं।

कृष्ण भक्ति कैसे प्राप्त होती है? महत्-कृपा से ही कृष्ण भक्ति प्राप्त होती है। साधु संग से महत्-कृपा होती है। उनके प्रभाव से कृष्ण भक्ति में श्रद्धा, भजन में प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। जीव भजन करने लगता है। भजन के साथ-साथ महत्-कृपा अपनी शक्ति से भजन प्रवृत्ति को परिपुष्ट करती रहती है। उससे भजन-प्रवृत्ति क्रमशः निष्ठा, रुचि, आसक्ति आदि स्तर तक हो उठती है। फिर कृष्ण-सुखैकतात्पर्यमयी सेवा वासना रूप प्रेम में परिणत हो जाती है।

श्रीकृष्ण-सेवा वासना है—**भक्ति लता**।

भक्ति लता का बीज है—महत्-कृपा से प्राप्त **भजन में प्रवृत्ति**।

भजन में प्रवृत्ति रूप बीज परिपुष्ट होता है—**श्रवण-कीर्त्तनादि साधन** के अनुष्ठान-रूप **जल से**।

इस लता की शाखा, प्रशाखा आदि हैं—**निष्ठा-रुचि-आसक्ति** आदि।

इस लता का फूल है—**रति-रूप (दिव्य-प्रेम)**।

इसका फल है—**प्रेम (शुद्ध)**।

सत्सङ्गादि एवं महत्-कृपा की प्राप्ति के बिना भजन में प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती है। प्रेम फल की प्राप्ति सम्भव नहीं है। जो भजन प्रवृत्ति अपने आप उत्पन्न होती है, उसमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वह भगवान की माया-शक्ति का मुकाबिला कर सके।

महत्-कृपा का स्पष्ट तात्पर्य है श्री गुरु कृपा और श्रीकृष्ण-कृपा।। गुरु कृपा से ही महत्-कृपा का अभिप्राय है।

कृष्ण-कृपा साधारणतः दो प्रकार से प्रकट होती है।

एक श्री गुरु रूप से। दूसरे अन्तर्यामी रूप से।

अन्तर्यामी भगवान की शिक्षा को जीव साधारणतः समझने में असमर्थ ही रहता है। अतः श्रीकृष्ण ही महान्त रूप से, किसी महत् पुरुष के रूप से जीव पर कृपा करते हैं। अतः कृष्ण कृपा का तात्पर्य महत्-कृपा से है।।

।। साधन मार्ग ।।

साधारणतः साधन मार्ग तीन प्रकार के हैं। ज्ञान-योग, कर्म-योग एवं भक्ति। ज्ञान मार्ग के साधक निर्विशेष अद्वैत ब्रह्म का अनुसंधान करते हैं एवं उसी को परतत्व कहते हैं। योग-मार्ग के साधक **परमात्मा** का ध्यान करते हैं एवं परमात्मा को **परतत्व** कहते हैं।

भक्ति दो प्रकार की है—(१) **ऐश्वर्यात्मिका** तथा (२) **माधुर्यात्मिका**। ऐश्वर्यात्मिका भक्ति के साधक षड़ैश्वर्यपूर्ण **परमव्योमाधिपति श्री नारायण** की उपासना एवं भक्ति करते हैं और उसे **परतत्व** कहते हैं।

माधुर्यात्मिका भक्ति के साधक व्रजेन्द्रनन्दन-यशोदा तनय श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं। श्रीकृष्ण को ही **परतत्व** कहते हैं। जो किसी की अपेक्षा नहीं करता है, वही परतत्व है। श्रीकृष्ण ही सर्व भाव से अन्य निरपेक्ष हैं एवं वही परतत्व हैं। श्रीकृष्ण ही श्रीचैतन्य रूप से प्रकट हुये हैं। अतः **श्रीचैतन्य** ही **परतत्व** हैं।

श्रीकृष्ण श्री चैतन्य रूप से केवल इसीलिये प्रकट हुये कि श्री राधाकृष्ण सुखैक तात्पर्यमयी जो परम धाम श्री वृन्दावन के सुन्दर निकुञ्जों में रतिरसशेखर प्रिया प्रीतम की अत्यन्त मधुर उपासना है कि वह विशुद्ध भक्ति-सम्पदा का प्रदान किया जावे। श्री राधाकृष्ण-प्रणय की चरमतम अवस्था ही महाभाव स्वरूपा है। वही श्रीकृष्ण की **ह्लादिनी शक्ति** है। श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं। अतः दोनों अभिन्न हैं—एकात्मा हैं।

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मिका ध्रुवम्।

परन्तु एकात्मिक होते हुये भी वे अनादि काल से श्री गोलोक धाम में

पृथक्-पृथक् दो देह धारण करते हुये विराजमान हैं। कलियुग में श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण एकता प्राप्त हुये श्री चैतन्य नाम से प्रकट हुये हैं।

श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियों में **संधिनी, सम्वित्** एवं **ह्लादिनी** शक्तियाँ प्रधान हैं। ह्लादिनी शक्ति के घनीभूत विकास का नाम ही 'प्रेम' है। प्रेम की अत्यन्त गहरी अवस्था का नाम **'महाभाव'** है। अतः यह महाभाव ही श्रीकृष्ण का **प्रणयविकार** है। श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण-शक्ति एवं शक्तिमान होने से—अभिन्न हैं। एक होते हुये भी लीला आस्वादन के लिये अनादि काल से दो पृथक् विग्रहों में प्रकटित होकर श्री गोलोक धाम में विराजमान हैं। रसास्वादन लीला में ही हो सकता है। इस रस का आस्वादन श्रीराधा के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता है। श्रीकृष्ण में महाभाव के अभाव के कारण वे भी इस रस का आस्वादन करने में असमर्थ रहते हैं। अतः श्री चैतन्य के विग्रह में श्रीकृष्ण श्रीराधा भाव को अङ्गीकार करके रसास्वादन हेतु ही श्री चैतन्य नाम से प्रकट हुये; क्योंकि यह रसास्वादन ब्रज लीला में नहीं हो सका था।

१—श्रीकृष्ण विभु हैं। अपनी शक्तियों के प्रभाव से जो अचिन्त्य हैं, एक ही समय अनेक रूपों से अनेक स्थानों पर आत्म-प्रकट करते हैं। ये समस्त भगवत् स्वरूप, विभु, नित्य एवं सच्चिदानन्दमय हैं।

२—परम व्योम के अधिपति श्री नारायण के द्वितीय व्यूह-महा **सङ्कर्षण** हैं (बलराम-नित्यानन्द)।

३—महा सङ्कर्षण के अंश प्रथम पुरुष **महाविष्णु** हैं।

४—**सहस्रशीर्षा** ब्रह्माण्डान्तर्यामी गर्भोदशायी द्वितीय पुरुष हैं, जो महाविष्णु का अंश होने से सङ्कर्षण के अंशांश हैं।

५—**विष्णु**—तृतीय पुरुष क्षीर समुद्रशायी, गर्भोदशायी के अंश हैं।

चिन्मय राज्य तथा मायिक ब्रह्माण्डों के बीच कारण-समुद्र है। जो चिन्मय जल से पूर्ण है एवं अनन्त है। महाप्रलय के बाद प्राकृत ब्रह्माण्डों को रचने के लिये **'सङ्कर्षण'** अपने एक अंश से समुद्र में शयन करते हैं। इनका नाम कारण समुद्रशायी प्रथम पुरुष महाविष्णु भी है।

साधारणतः माया शक्ति स्वयं भगवान श्रीकृष्ण की एक शक्ति है। श्रीकृष्ण साक्षात्-भाव से माया से कोई सम्पर्क नहीं रखते हैं। उनकी आज्ञा से श्री बलराम ही कारण समुद्रशायी महाविष्णु के रूप से माया का नियंत्रण करके सृष्टि कार्य अर्थात् ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति करते हैं। अतः ये ही माया के अधीश्वर हैं। अतः ये साक्षात् माया भर्त्ता कहे गये हैं।

ये महाविष्णु जड़ माया के प्रति दृष्टिपात करके माया में सृष्टिकारिणी शक्ति पैदा करते हैं। माया द्वारा अनेक ब्रह्माण्डों को पैदा करते हैं। ये प्राकृत प्रलय में अनन्त कोटि जीवमय अनन्त ब्रह्माण्डों को सूक्ष्म रूप से अपनी देह में धारण करते हैं।

एवं सृष्टि के आरम्भ में उसे बाहर कर देते हैं । अतः ये महाविष्णु ही समस्त ब्रह्माण्डों के **'आश्रय'** हैं । सृष्टि कार्य के लिये ईश्वर या जो स्वरूप प्राकृत ब्रह्माण्ड में अवतीर्ण होता है, उसे **'अवतार'** कहते हैं । ईश्वर के जो-जो स्वरूप सृष्टि कार्य में लगे हुये हैं उनमें सबसे पहले कारण समुद्रशायी (**महाविष्णु**) पुरुष ने ही सृष्टि का कार्य आरम्भ किया है । फिर उन्हीं के अंश ही अन्यान्य ईश्वर स्वरूप रूप से आत्म-प्रकट कर सृष्टि कार्य करते हैं । इसलिये इनको **'आदिदेव'** अथवा **प्रथम पुरुष**—प्रथम अवतार कहा गया है ।

महाविष्णु अनन्त ब्रह्माण्डों की जब सृष्टि कर लेते हैं, फिर वे एक अंश से या एक रूप से प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते हैं । उस अंश या रूप का नाम **गर्भोदशायी** है । अथवा उसे द्वितीय पुरुष भी कहते हैं ।

श्री महाविष्णु का यह रूप जब ब्रह्माण्ड में प्रवेश करता है तो अपने स्वेद से आधे ब्रह्माण्ड को पूर्ण कर देता है । उस घर्म-जल (**उद्**) के बीच में (**गर्भ में**) शेष शय्या पर शयन करता है । अतः इसे गर्भ + उद् + शायी = गर्भोदशायी कहते हैं । इनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ है । उस कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है । एवं कमल की नाल के नीचे के भाग में पाताल, रसातल, महातल, तलातल, सुतल, वितल और अतल इन सप्त पातालों की स्थिति है ।

इसके ऊपर के भागों में सप्तलोक भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महलोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक अवस्थित **हैं** । यह व्यष्टि ब्रह्माण्ड तथा हिरण्यगर्भ (**ब्रह्मा**) का अन्तर्यामी है । इसे भी सहस्रशीर्षा कहते हैं । इसी रूप से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इन तीनों गुणावतारों की उत्पत्ति होती है ।

ब्रह्मा जब जीवों की सृष्टि करते हैं तब गर्भोदशायी अपने एक अंश से एक रूप से प्रत्येक जीव के अन्तःकरण में प्रवेश करते हैं ।

गर्भोदशायी के उस रूप को अन्तर्यामी **परमात्मा** कहते **हैं** । ये परमात्मा एक रूप से पृथ्वी लोक स्थित क्षीर समुद्र में शयन करते हैं । ये गर्भोदशायी का अंश हैं एवं क्षीर समुद्रशायी कहलाते हैं ।

क्षीर समुद्रशायी-विष्णु चतुर्भुज स्वरूप हैं । श्री भगवान का गुणावतार हैं । अधर्म का नाश एवं धर्म संस्थापन हेतु यही युगावतार के रूप में जगत की रक्षा करते हैं । अतः इन्हें पोष्टा कहा गया है । यह तृतीय पुरुष के नाम से विख्यात हैं ।

क्षीर समुद्रशायी एक रूप से पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण करते हैं । उस रूप का नाम अनन्त या शेष भगवान है ।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण की **बहिरङ्गा शक्ति** का नाम माया है । यह माया दो रूपों में है—(१) **प्रधान** (२) **प्रकृति** । **'प्रधान'** को गुण माया कहते हैं । **'प्रकृति'** को जीव माया कहते **हैं** । सत्व, रज, तम इस त्रिगुण युक्त माया को गुण माया कहा गया है । जो (**ईश्वर की शक्ति**) जीव के स्वरूप ज्ञान को ढककर जीव को मायिक—

उपाधि युक्त—करती है और जीव पर अपनी **आवरणात्मिका** तथा **विक्षेपात्मिका** शक्ति को नियोजित करने से जीव को अवलम्बन करने से ही जिसकी क्रिया प्रकाशित होती है, उसे जीवमाया या अविद्या कहते हैं।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण जब अवतीर्ण होते हैं तब वे निज स्वरूप से प्रकट होते हैं। फिर वे अपनी इच्छा शक्ति से विलास (**श्री बलराम**), अवतार (**श्री सदाशिव**), भक्त (श्री **उद्धवादि**) एवं शक्ति (**माता-पिता व्रजाङ्गनादि**) इन चारों रूपों से प्रकट होते हैं। ये चारों रूप साधारणतः लीला में श्रीकृष्ण से भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में ये चारों स्वरूप श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं।

इसी प्रकार स्वयं भगवान चैतन्य रूप से प्रकट हुये हैं। उन्होंने स्वयं को प्रकट किया है चार रूपों में—विलास स्वरूप या भक्त स्वरूप **श्री नित्यानन्द** हैं, भक्तावतार श्री **अद्वैत हैं, भक्त श्रीवासादि** है एवं भक्त शक्ति **श्रीगदाधर जी** हैं।

भगवान के सभी नाम अभिन्न हैं—एक हैं। केवल **नामान्तर** व **रूपान्तर** है। अतः अभिन्नता का प्रश्न ही नहीं उठता है।

श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं। इनकी स्वतन्त्र भगवत्ता है। श्रीकृष्ण ही सबका मूल तत्व हैं। वे पूर्णतम आनन्द स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण शक्ति-लीला-ऐश्वर्य तथा माधुर्य में सबसे सब प्रकार परम श्रेष्ठ तत्व हैं।

श्रीकृष्ण **आविर्भाव** भेद से इन तीनों नामों को धारण करते **हैं—ब्रह्म, परमात्मा** तथा **पूर्ण भगवान**।

श्रीकृष्ण के एक प्रकार के प्रकाश का नाम **'ब्रह्म'** है।

दूसरे प्रकार के प्रकाश का नाम **'परमात्मा'** है।

तीसरे प्रकार के प्रकाश का नाम **'पूर्ण भगवान'** है।

स्वयं रूप, जिनमें तीनों प्रकाश **हैं** उनका नाम श्रीकृष्ण है।

ब्रह्म—श्रीकृष्ण का जो निर्विशेष स्वरूप है, जिस स्वरूप का कोई गुण व विशेषण नहीं है; जिसमें रूप, गुण लीला कुछ भी नहीं है। केवल चित्-सत्ता या आनन्द सत्ता मात्र है। उस स्वरूप का नाम 'ब्रह्म' है। ज्ञान मार्ग के साधक इस स्वरूप की उपासना करते हैं।

परमात्मा—जो अन्तर्यामी है। उसके तीन स्वरूप हैं। समुद्रशायी सहस्र-शीर्षा—प्रथम पुरुष। गर्भोदशायी द्वितीय पुरुष (**ब्रह्मा का अन्तर्यामी**) तथा जीव का अन्तर्यामी (**क्षीर समुद्रशायी, चतुर्भुज-तृतीय पुरुष**)। यह तीनों सविशेष स्वरूप हैं। इनमें रूप, लीला, गुणादि हैं। ये तीनों स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के स्वांश हैं। योग मार्ग के साधक इन अन्तर्यामी स्वरूपों के उपासक हैं।

पूर्ण भगवान (**स्वयं भगवान**) :—श्रीकृष्ण के जिस आविर्भाव में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति, पूर्ण बल, पूर्ण ऐश्वर्य, पूर्ण वीर्य एवं पूर्ण तेज है तथा अनन्य अप्राकृत गुण

हैं—उसे षड़ैश्वर्य पूर्ण भगवान कहते हैं। पर व्योम के अधिपति श्री नारायण ही षड़ैश्वर्य पूर्ण भगवान हैं, वह श्रीकृष्ण का विलास स्वरूप हैं, वह चतुर्भुज हैं एवं उनका श्याम वर्ण है। वे भक्ति मार्ग के साधकों के उपास्य हैं।

गोपीजन न तो ब्रह्म को जानती हैं न परमात्मा को, न नारायण को, इसके अतिरिक्त न वे स्वधर्माचरण एवं वर्णाश्रम धर्माचरण में रहती हैं (**धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष**), वे तो नन्दनन्दन यशोदा तनय श्रीकृष्ण को ही अपना प्राणवल्लभ जानती हैं। उनके सामने कौन ईश्वर है, कोई पता नहीं है। उनका तो श्रीकृष्ण से सीधा सम्बन्ध है। उनका अपना कोई सुख है, न दुःख। वे तो श्रीकृष्ण सुख विधान में ही तत्पर हैं। इसके अलावा उनकी कोई अन्य गति है ही नहीं। वे तो नित्य कृष्ण का चिन्तन करती रहती हैं—उनसे मिलने की उनके हृदय में उत्कट उत्कंठा सदैव रहती है। वे श्री कृष्ण में कभी भी दोष बुद्धि नहीं रखती हैं। उनका प्रीति विधान ही उनका एकमात्र जीवन है। अतः यह सेवामयी भावना ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अतिरिक्त **'पंचम पुरुषार्थ'** है जिसका पूर्ण ज्ञान गोपी गीतों में भरा हुआ है।

गोपिका गीत प्रारम्भ करने से पूर्व—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का निरूपण करना आवश्यक है।

जीव का **साध्य** क्या है ? साध्य का अर्थ है **काम्य वस्तु** या **अभीष्ट वस्तु**। जीव सुख चाहता है। सुख ही काम्य वस्तु है। जीव दुःख नहीं चाहता है। अतः सुख प्राप्ति एवं दुःख-निवृत्ति हमारी काम्य वस्तु या साध्य वस्तु हैं। सुख के विषय में भी अनेकों धारणायें हैं। धारणाओं के अनुसार काम्य वस्तु को साधारणतः चार श्रेणियों में विभक्त किया जाता है—जिन्हें **पुरुषार्थ** कहते हैं। वे चार पुरुषार्थ हैं—**धर्म, अर्थ, काम** एवं **मोक्ष**। कुछ जीव ऐसे हैं जो संसार के सुख-भोगों को चाहते हैं परन्तु उनकी इनमें पूर्ण-तृप्ति नहीं होती है। वे मृत्यु के पश्चात् स्वर्गादि के सुख भोगों की कामना करते हैं। अतः परलोक के सुख के लिये वे धर्म का अनुष्ठान किया करते हैं—उन लोगों के पुरुषार्थ का नाम **धर्म** है।

दूसरी श्रेणी में कुछ ऐसे लोग हैं जो इन्द्रियों का भोग चाहते हैं और उसी में सुख मानते हैं। किन्तु वे स्थूल-भोग नहीं चाहते, बल्कि शरीर, मन एवं समाज के स्वास्थ्य को भी वे बिगाड़ना नहीं चाहते। वे आत्मा का शोधन भी चाहते हैं। समाज में अपना आदर-सम्मान भी चाहते हैं। परोपकार भी यथासाध्य करते हैं। इन सब बातों को बनाये रखने के लिए वे धन का सञ्चय करते हैं। इस पुरुषार्थ का नाम **'अर्थ'** है।

तीसरी श्रेणी में वे जीव हैं जिनका आवेश देह एवं इन्द्रियों में है। वे देह-इन्द्रियों के सुख को ही सुख समझते हैं। पशुओं की भाँति आहार, निद्रा, मैथुन आदि स्थूल इन्द्रियों का भोग चाहते हैं। उन्हें अपनी कामनाओं को पूर्ण करने में शरीर, मन एवं समाज के पतन की कोई परवाह नहीं रहती है। उन लोगों के पुरुषार्थ का नाम **'काम'** है।

इन तीनों श्रेणियों के जीवों के पुरुषार्थ का पर्यवसान शरीर एवं इन्द्रियों का सुख है। स्वर्ग का सुख भी तो शरीर का सुख है। स्वर्ग सुख भोगने के पश्चात् उन्हें फिर इस जगत में आना पड़ता है। तीनों को **नित्य सुख** की प्राप्ति नहीं होती है। उनके दुःखों की **आत्यन्तिकी निवृत्ति** भी नहीं होती है। अतः इनमें वास्तव पुरुषार्थ नहीं है। जिससे इन्हें 'साध्य' भी नहीं कहा जा सकता। **'साध्य'** वही हो सकता है, जिसमें नित्य सुख एवं दुःखों की आत्यन्तिकी-निवृत्ति हो।

चौथी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो देह एवं इन्द्रियों के सुख को अनित्य मान कर उक्त तीन प्रकार के पुरुषार्थों के प्रति लुब्ध नहीं होते हैं। वे जानते हैं कि देह अनित्य है। अतः देह सुख भी अनित्य है। जीव का अनित्य देह से जो सम्बन्ध है, वह सम्बन्ध केवल माया के कारण है। माया बन्धन से निवृत्त होने पर जीव का अनित्य देह से सम्बन्ध छूट जाता है। तभी नित्य सुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सोचकर वे माया बन्धन से मुक्त होने की चेष्टा करते हैं। उन लोगों के पुरुषार्थ का नाम 'मोक्ष' है।

मोक्ष से दुःख की आत्यन्तिकी-निवृत्ति हो जाती है और नित्य ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है। इसलिए मोक्ष में पुरुषार्थता है। परन्तु मोक्ष में **'परम पुरुषार्थता'** नहीं है। क्योंकि मोक्ष प्राप्त जीवों में भी भगवत्-भजन का लोभ उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये श्री शुकदेव एवं नारदादि हैं।

भगवद्-भजन की प्राप्ति का एक मात्र उपाय केवल **'प्रेम'** है। इस प्रेम के लिये अर्थात् भगवत्-सुखैकतात्पर्यमयी सेवा के लिये श्री शुक-सनक-नारद आदि मुक्त पुरुष भी सदैव लालायित रहते हैं। अतः भगवत् प्रेम ही परमतम-चरमतम 'पुरुषार्थ' है। यही **'पंचम पुरुषार्थ'** है। इसे ही **परम साध्य** कहते हैं।

इस **प्रेम** के द्वारा अर्थात् स्वसुखगध-लेश शून्य भगवद्-सुखैक-तात्पर्यमयी-सेवा द्वारा इस स्वरूप माधुर्य मूर्ति श्री कृष्ण के सर्व-चित्ताकर्षी माधुर्य का अनुभव करके अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। इससे जीव की चिरन्तनी सुख वासना की चरम तृप्ति हो जाती है और दुःख की आत्यन्तिकी-निवृत्ति तो अपने आप ही हो जाती है।

जीव का स्वरूप श्री कृष्ण का नित्य **'दास'** है। जीव का स्वरूपानुवन्धि कर्त्तव्य है—**'श्रीकृष्ण सेवा'**। सेवा का तात्पर्य है केवल सेव्य का **प्रीति-विधान**। उस सेवा में यदि अपने सुख की किंचित मात्र भी वासना रहती है तो वह सेवा नहीं **कपट** एवं **ढोंग** है। इस सेवा को सम्पादन करने की शक्ति केवल **प्रेम** में हो है। अतः **श्री कृष्णप्रेम** ही वास्तव में साध्य वस्तु है। जो **निष्ठा-दासता (सेवा)**, **सख्य (असंकोचता)** एवं लालन-पालन की आसक्ति **वात्सल्यता** के बिना **माधुर्यता** को प्राप्त नहीं हो सकती है।

अहा ! ये गोपी गीत तो ऊपर लिखे हुए साध्य की पूर्ति ही नहीं करता है, वरन् 'पंचम पुरुषार्थ' की चरम से चरम सीमा तक पहुँचता है।

श्रीकृष्ण विग्रह में—**प्रकाश** है, **विकास** है। ओंकार, गुण एवं लीलादि में सब प्रकार से एक रूप में रहते हुए एवं विग्रह का एक ही समय में अनेक स्थानों पर जो आविर्भाव होता है उसे **प्रकाश** कहते हैं।

एक ही विग्रह (**स्वरूप**) पृथक्-आकृतियों में यदि पृथक् भावों से प्रकट हो, उन पृथक् आविर्भावों को **विलास** कहते हैं।

श्री बलदेव; परव्योमाधिपति श्री नारायण, वासुदेव, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण एवं अनिरुद्ध (**द्वारिका का चतुर्व्यूह**) ये सब श्री कृष्ण के विलासरूप हैं। श्री कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति (**श्री राधिका**) का विलास भी तीन प्रकार है--(१) बैकुण्ठ में लक्ष्मी (२) द्वारिका में महिषीगण (३) ब्रज में गोपीगण जो सब में प्रधान हैं। वे श्रीकृष्ण के अनुरूप ही हैं। श्री गुरुदेव, अवतार समूह, प्रकाश रूप, विलासरूप, शक्ति तथा महत् पुरुष ये सब स्वयं श्री कृष्ण के परिकर हैं।

इस भूमिका में भगवत स्वरूप (श्री कृष्ण स्वरूप) का जो वास्तविक भाव प्रकट किया गया है, उसका अभिप्राय यही है कि आलोचक महोदय भगवत स्वरूप की वास्तविकता को जानने का प्रयत्न करते हुए शाब्दिक प्रपंचों में न पड़कर 'पंचम पुरुषार्थ' को समझने की चेष्टा करें। यही निवेदन है।

गोपी-गीत

●

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ॥
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका—
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

गोपियों को श्याम सुन्दर का विरह सता रहा है । अतः गायन प्रारम्भ करती हैं । हे प्रिय ! हे श्यामसुन्दर ! हे कृष्ण ! आपका ब्रज में जन्म (प्राकट्य) होने का विशेष महत्व है । इस आपके प्राकट्य से ब्रज की महिमा, ब्रज का गौरव, ब्रज की उपयोगिता या लाभ समस्त लोकों से अधिक हो गया है । आपका निवास स्थान वैकुण्ठ एवं गोलोक धाम आदि हैं । देवलोक (स्वर्ग), जनलोक, महलोक तपलोक एवं सत्यलोक आदि हैं । पाताल लोक भी आपका निवास है । इन सब निवास स्थानों से ब्रज की महिमा अधिक बढ़ गई है । जीव भगवान की भक्ति करके, या ज्ञान द्वारा, या स्वधर्म का पालन करके, या निष्काम कर्म करके या योग साधन द्वारा—वैकुण्ठ प्राप्त करते हैं । गोलोक धाम में परिकर या पार्षद रूप प्राप्त करते हैं—या पाँचों प्रकार की मुक्ति प्राप्त करते हैं—इन को प्राप्त करने के लिये यज्ञ, तप, व्रत-संयम करते हैं—अहंकार का समूल नाश करने का प्रयास करते हैं—इस प्रकार दैन्यमय जीवन बनाते हैं । यह प्रयास आप (कृष्ण) की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं—जिससे आपका साक्षात्कार हो—आपका सान्निध्य प्राप्त हो एवं जन्म-मरण से पीछा छूटे ।

हे श्याम सुन्दर ! यह समस्त उपलब्धियाँ तो ब्रज में आपके प्राकट्य होने के कारण बिना किसी भी प्रयास के प्राप्त हो गई हैं । अतः ब्रज में जब आपके दर्शन होते हैं तो अब किसी प्रयास या बखेड़े की आवश्यकता नहीं है । अब आपके दर्शन से ब्रज में किसी भी साधना की आवश्यकता नहीं रही कि अपने संचित पाप और पुण्यों को क्षय करने की साधना की जावे । ये तो आपके दर्शन मात्र से ही उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं—अतः समस्त लोकों से ब्रज की महिमा आपके प्राकट्य से अधिक हो गई है ।

हे प्रिय ! ब्रह्मा; महादेव, गौमाता सुरभि, एवं अनन्त मोक्ष प्राप्त नारदादि ब्रज में अपने भव्य लोकों को छोड़-छोड़ कर आते हैं । उनका आगमन ही इस बात का साक्षात् प्रमाण है कि आपके प्राकट्य से ब्रज की महिमा उन समस्त लोकों से अधिक

हो गई है। समस्त श्रुतियों एवं मुनियों ने आपके दर्शन प्राप्ति के कारण आपके ब्रज में प्राकट्य होने से पूर्व ही यहाँ चराचर रूप में, जड़-चेतन रूप में, पशु, पक्षी, लता; वृक्ष, पुष्प एवं भ्रमर रूप में यहाँ ब्रज में अपना निवास बना लिया है ताकि आपके चरणों का स्पर्श हो। आपकी वेणु ध्वनि कर्णगोचर हो, आपके कमल हस्त का स्पर्श एवं आपके कमल नयन व मधुर मुसकान युक्त मुखारविन्द के दर्शन हों। (**ये दर्शन, यह रस, यह आनन्द उनको अपने-अपने लोकों में अप्राप्य है**)।

हे प्रिय ! देखिये आपके ब्रज में जन्म लेने से लक्ष्मी जी भी वैकुण्ठ जैसे धाम को त्याग कर ब्रज में नित्य निरन्तर निवास कर रही हैं--आश्रय दे रही हैं—वैकुण्ठ में देवता लोग भी लक्ष्मी जी की सेवा करते हैं उनको प्रसन्न करने के लिये परन्तु आपके प्राकट्य के कारण लक्ष्मी जी ब्रज में सेवा करती हैं। ये तो लक्ष्मी जी आपके यहाँ जन्म लेने के कारण ही इस प्रकार की सेवा कर रही हैं कि ब्रज में धन, धान्य आदि की कितनी प्रचुरता है। यहाँ लक्ष्मी जी ब्रज वासियों को पूर्णरूपेण समृद्ध करके सर्वरूपेण सुख प्रदान कर रही हैं। आपके बज में प्राकट्य से ब्रज वासियों का कैसा सौभाग्य है। अन्य लोकों में प्राणी श्री लक्ष्मी जी की पूजा करते हैं यहाँ ब्रज में आपके प्राकट्य के कारण लक्ष्मी जी ब्रज वासियों की सेवा कर रही हैं।

हे प्रिय ! हम गोपियाँ तो आपकी निज जन हैं। हम अपने प्राणों को आप में धारण किये हुये—आप में ही प्राणों को लगाये हुये, आपको दशों दिशाओं में ढूँढ़ रही हैं। आपके प्राकट्य से ब्रजवासी जितने सुखी हैं—परन्तु हम भी ब्रजवासिनी हैं एवं तेरे चरणों में प्राणों को रख कर तेरे दर्शन के लिये कितनी परेशान हो रही हैं। हमारे साथ यह दुरंगा व्यवहार क्यों ? हमारे विरह की ज्वाला तो मिलन से ही शान्त होगी। जो पूतना तेरा वध करने आई, उसका स्तन पान तूने कैसे प्रेम से किया और फिर उसे गति दे दी। धन्य है तुझे और इस ब्रज को। परन्तु हमारे साथ यह कठोर व्यवहार क्यों ? **प्रभु (कृष्ण)** वास्तविक आनन्द तो विरह में ही देते हैं।

शरदुदाशये साधुजातसत्—सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ।।२।।

हे हमारे सुरत प्रेम के स्वामी ! (**हमारे दिव्य प्रेम के स्वामी !**) सुरत प्रेम (**दिव्य प्रेम**) का स्थान हृदय है। अतः हमारे हृदय के स्वामी ! स्वामी, आपकी दृष्टि कैसी है। शरद ऋतु के सरोवर का जल अत्यन्त निर्मल एवं पवित्र होता है। शरद ऋतु भी तो आपकी दासी है। ब्रज में बारह महिने आपकी सेवा के लिये आपकी दासी होने के नाते आपकी सेवा करने हेतु सरोवरों में निर्मल जल बनाये रखती है। ऐसे सरोवर में साधु रीति (**सुन्दर ढंग**) से पैदा हुआ कमल क्यों न आपकी सेवा के लिये साधु ही हो ? आपकी सच्ची सेवा तो साधु ही करते हैं। साधु ही तो आपको प्रिय हैं। अतः धर्माचरण करने वाले जीव आपको प्रिय हैं। परन्तु ब्रज के चर-अचर सभी उन धर्मात्माओं से श्रेष्ठ हैं (क्योंकि इन पर आपकी कृपामयी दृष्टि निरन्तर

पड़ती रहती है) । अतः ये जड़ जंगम ब्रज वासी निरन्तर आपसे आनन्द प्राप्त करते रहते हैं। साधु रीति से उत्पन्न होने वाले चर-अचर आपका सुख विधान करने में तत्पर रहते हैं। ब्रज के समस्त जड़ जंगम तो ब्रज में आने से पूर्व साधु ही थे। उस समय आपका प्रेम मिला। अब वे आपका सुख विधान करके आपका आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।

ऐसे पैदा हुये कमल की कर्णिका की शोभा का क्या कहना है। क्यों ? इस कर्णिका में ही तो हम गोपियों की मंजरियों तक का सदैव निवास है (**हमारा अपना कोई सुख नहीं है। हम सब तो आपका ही सुख विधान करती हैं।**) **किशोरी जू तथा आपका निवास तो इसी कर्णिका में है। आप अपनी दृष्टि से उस कर्णिका की शोभा को चुराते हो (पक्के चोर हो क्योंकि हृदय को खींचना एवं चुराना तो आपकी बान है)** आपकी दृष्टि अतः कितनी सुन्दर, कितनी मनोहर कितनी आकर्षक एवं कितनी प्रेम रस से सनी हुई है ! इस दृष्टि से केवल वे ही चुराये एवं आकर्षित किये जा सकते हैं जिन्हें आप अपनी सान्निध्यता में रखते हैं। वैकुण्ठ प्राप्त एवं मोक्ष-प्राप्त जीवों को यह सौभाग्य कहाँ ?

आपने उसी दृष्टि से हम गोपियों का वध किया है। हमारे हृदय-प्राणों एवं मन को आपने खींचकर अपने में स्थापित कर लिया है।

हम अबलाओं का आपके अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं है। उनका आप इस प्रकार दृष्टि से वध कर रहे हैं। हम तो आपकी बिना मोल की दासी हैं हमें तो आपसे कुछ लेना है नहीं। बिना स्वार्थ की दासी हैं। ऐसी दासियों को इस प्रकार कष्ट देना और ऐसी दृष्टि से (**जिस दृष्टि से कष्ट नहीं होना चाहिये**) कहाँ तक उचित है ? आप इस औचित्य को निबाहिये। हमारा कष्ट हरण करिये और दर्शन दीजिये।

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ॥
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥

श्री श्यामसुन्दर गोपियों की दृष्टि से बाहर हैं। वे कहीं गये नहीं। वहीं थे। वे तो सर्वत्र सब समय रहते हैं परन्तु गोपियों के दृष्टिगोचर नहीं है। उन्हें न देखकर गोपियों की दशा का क्या कहा जावे ? विरह की ज्वाला से संतप्त हुईं गोपियाँ प्रिय श्यामसुन्दर द्वारा की हुई समस्त लीलाओं का स्मरण करती हैं और उनका गायन प्रारम्भ करती हैं। ऐसी दशा में और कोई चारा भी नहीं था। ये लीलायें श्रीकृष्ण की ब्रज पर की हुईं कृपायें थीं। ये कृपायें गोप, गोपी, ग्वालवालों की प्रार्थना करने पर नहीं की गई थीं। यह कृपायें तो श्यामसुन्दर के अद्वितीय स्वभाव-वश हुईं। श्रीकृष्ण का स्वरूप ही भक्तवत्सल है। वे भक्त के कष्ट को एवं अपने निज जनों के कष्टों को सहन नहीं करते हैं। गोपियां तो उनकी निज जन हैं। समस्त गोप ग्वाल भी निज जन हैं। गोपियों का जीवन निज सुख रहित है। वे तो दिन-रात कृष्ण सेवा में ही व्यतीत करती हैं। उन्हीं का सुख विधान करती हैं।

उनका प्रेम कृष्ण के प्रति काम का था (**दिव्य प्रेम था**)। वे अपने को निरंतर कृष्ण दर्शन, कृष्ण सेवा, कृष्ण वाणी श्रवण में लगाये रहती थीं। गोपी जन तो ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी एवं उनकी कायव्यूह हैं। कृष्ण इस कायव्यूह के प्रवर्त्तन करता—रमण कर्त्ता—गोपियों के साथ परम मधुर लीला कर्त्ता हैं। अतः गोपियां उन बीती हुई लीलाओं तथा कृपाओं का स्मरण करने लगीं। ये बीती हुई कृपायें विरह के समय याद आती हैं। क्योंकि इनके स्मरण करने से विरह की आग ही शान्त नहीं होती है अपितु धैर्य के रूप में सुख देती है। भक्त क्यों कृष्ण लीलाओं को प्रेम से पढ़ते हैं—और प्रेम से अन्य जीवों को सुनाते हैं—क्योंकि इन लीलाओं में कृष्ण की अहैतुकी कृपा, अमृत एवं वह रस भरा हुआ है जो समस्त शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सुख एवं आनन्द प्रदान करता है।

अतः गोपियां कहती हैं, "हे प्यारे ! तूने काली नाग द्वारा श्रीयमुना जल जो विषैला हो गया था—उसे गोप तथा गायों ने पी लिया था, जिससे मृत्यु अवश्यम्भावी थी—उससे सबके प्राणों की रक्षा ही नहीं की—बल्कि कालीदह से नाग को निकाल कर, स्वयं उस जल में कूदकर इतना पवित्र कर दिया कि कालीदह तीर्थ स्थान बन गया। विषैले जल से होने वाली मृत्यु से रक्षा की। अघासुर राक्षस सर्प रूप धारण करके आया। उसे मार कर गति देकर ग्वाल बाल व गायों की रक्षा की। घोर वर्षा, आँधी, तूफान और तीखी हवा इन्द्र ने कोप करके ब्रज में की और ब्रजवासियों को महान कष्ट देने की पूर्ण चेष्टा व प्रयास किया। तो श्यामसुन्दर तूने श्री गोवर्धन को अंगुली पर सात दिन उठाये रखा और समस्त गोप-गोपी-गायों आदि को गोवर्धन के अन्दर सब प्रकार से आनन्द में रखकर उनकी रक्षा की। दावानल (दावाग्नि) भला किसे छोड़ती है ? उसको तूने पान करके ब्रजवासियों एवं गौओं की प्राण रक्षा की। वृषभासुर एवं व्योमासुर जैसे भयंकर राक्षसों को मारकर ब्रज की रक्षा की।"

इस प्रकार इन लीलाओं का स्मरण करके गोपियाँ कहती हैं, "**हे श्रेष्ठ पुरुष शिरोमणे ! श्यामसुन्दर ! आपने संसार के समस्त भयों से बार-बार हमारी रक्षा की है। अब हमारा क्या अपराध है कि आप हमें यहाँ घोर रात्रि में अकेली छोड़ गये हो ?**"

न खलु गोपिकानन्दनो भवा—नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ॥
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥४॥

गोपी इस गीत में प्रिय का वास्तविक स्वरूप वर्णन करती हैं। उनका कहना है कि हे प्रिय, तू यह न समझना कि हम तुझको जानती नहीं हैं। तू लाला रूप से यशोदा जी का पुत्र ही नहीं है। मामूली बालक नहीं है। असाधारण से भी असाधारण हो। सब जीवधारियों की आत्मा को देखने वाले हो। सब की आत्माओं में निवास करते हो। उनके साक्षी हो। उनके घट-घट की बातों को जानते हो। तुम से कोई बात छिपी नहीं है। जो तेरे इस स्वरूप को नहीं समझते हैं, वे अविवेकी तथा मूर्ख हैं।

धोखा खायेंगे। परन्तु हम गोपियां तो इस रहस्य को भले प्रकार जानती हैं। भला हम धोखा कैसे खा सकती हैं? इतना होने पर भी कि हम आपको ठीक-ठीक समझती हैं, आप हमारे हृदय की गोपनीयता को जानते हो कि अपना हृदय आपको समर्पित कर चुका हैं। फिर हमारे साथ यह वंचना क्यों? तुम हमको ठग नहीं सकते हो।

हे सखे! हम जानती हैं कि शक्तिशाली यदुवंश में आपका उदय हुआ है। यह ब्रह्मा की प्रार्थना पर संसार की रक्षा के लिये हुआ है। परन्तु संसार के कष्टों का निवारण और राक्षसों से **भूभार** हरण तो आपके किसी भी अंश या छोटे-मोटे अवतार से ही हो जाता। हम जानती हैं आपका प्राकट्य तो इस कारण से हुआ है कि संसार के प्राणियों के उन आत्मिक कष्टों का निवारण करें जिन्हें आपके प्राकट्य से पूर्व आपके अनेकों अवतारों ने पूर्णतया निवारण नहीं किया। यानी समस्त अवतारों ने स्वधर्म-पालन संसार के प्राणियों से कराया—समस्त मर्यादाओं का पालन कराया—उनको वैकुण्ठ आदि लोकों में पहुँचाया। उनको पाँचों प्रकार की मुक्तियाँ भी प्रदान कीं। उनको प्रजापति तक की पदवी दी। उनको श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोक में पहुँचाया। यहाँ तक किया कि उनको अपने स्वरूप में ही मिला दिया। परन्तु ये प्रेम—यह सान्निध्यता—यह सेवा सुख—यह रस—यह **पंचम पुरुषार्थ**—यह आपके रस की अनुभूति एवं माधुर्यता का पान कराने के लिये तथा अपने प्रेमियों की निज सुख की भावना का लोप करने के लिये—केवल आपका ही सुख विधान करने की सेवा में लगाने के लिये—आपके विरह में आनन्द दिलाने के लिये—आपका निरन्तर स्मरण करने के लिये ही आपका विशेष रूप से प्राकट्य हुआ है।

हे हमारे प्रिय सखे! इस रहस्य को हम भले प्रकार जानती हैं।

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्॥
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥५॥

गोपियाँ कहती हैं, "हे वृष्णिवंश में शिरोमणे! आप यदुवंश में सर्वोच्च हैं। जिसका स्थान वंश में सर्वोच्च होता है, वही रक्षा करने में सामर्थ्यवान् होता है। उसी से सहायता की प्रार्थना की जा सकती है। वह स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र है, वह किसी प्रकार के भय से ग्रसित नहीं होता है। अतः गोपियां कृष्ण की सामर्थ्य-वादिता में पूर्ण आश्वस्त हैं। संसार में अनेकों भय हैं। तीनों प्रकार के तापों से जीव सदैव भयभीत रहता है। माया द्वारा बंधन प्राप्त भय सबसे भयंकर है। अतः लोग सांसारिक भयों से भयभीत हैं। ऐसे जीव जब आपके चरणों का आश्रय लेते हैं तो इस आश्रय से वे सांसारिक भयों से अभय हो जाते हैं। आपके आश्रय से किसी प्रकार का भय पीड़ित नहीं करता।

हम गोपियां तो आपके चरणों की दासी हैं। तो इस घोर वन में क्या भय हमको हो सकता है? परन्तु हमारे भय का रूप पृथक् है। आप द्वारा विरहाग्नि से

जो भय उत्पन्न हुआ है, उस भय को तो आपके द्वारा चरण की शरण ही दूर कर सकती है। भय यह है कि मिलन या दर्शन होगा कि नहीं।

हे कान्त ! आपका कर कमल समस्त कामनाओं एवं इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है। उसी आपके कर कमल द्वारा श्री लक्ष्मी जी का कर ग्रहण किया। आप उस कर कमल को हमारे सिर पर रखिये। जो हाथ सिर पर रखा जाता है उसका अभिप्राय यह होता है कि हाथ जिसके सिर पर रखा जाता है उसका पूर्ण उत्तर-दायित्व ले लेता है। अतः आप अपने कर कमल को हमारे सिर पर रख दीजिये कि हम आश्वस्त हो जावें कि आपने हमारी पूर्णरूपेण जिम्मेदारी ले ली है। और जिम्मेदारी न प्राप्त होने की आशंका या भय दूर हो जावे। कृष्ण सेवक एवं भक्त माधुर्य भाव में केवल यही चाहता है कि कृष्ण दर्शन साक्षात् या ध्यान में निरन्तर होता रहे और उनकी सेवा होती रहे। अतः कृष्ण कर कमल जब सिर पर हो तो दर्शन के अभाव का भय नहीं रहता है। हे नाथ ! जब आप छिप जाते हैं तो आपके दर्शन बिना हम भयभीत हैं। शीघ्र अपना कर कमल हमारे सिर पर रख दीजिये। जब आप कर कमल रखोगे तो दर्शन तो पहिले ही हो जावेंगे। दर्शन होते ही भय तुरन्त नष्ट हो जायेगा। साथ ही साथ कर कमल सिर पर आते ही आप हमारे प्रति उत्तरदायी हो जावेंगे। भविष्य के इस प्रकार के सम्भावित भय से हम बिलकुल वंचित हो जावेंगी।

आपने अपने कर कमल से लक्ष्मी जी का हाथ ही पकड़ा था। यानी उन्हें पत्नी बनाया है। हम गोपियों के तो आप प्राणों के कान्त हैं। हमने आपको हृदय में धारण कर लिया है। परन्तु कान्त बनने का पूर्ण उत्तरदायित्व तो आपका तभी होगा जब आप हमारे सिर पर अपना कर कमल रख दोगे। अन्यथा हमको वही भय बना रहेगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आपके कर कमल के रखे बिना हम यहाँ बिलख रही हैं। आप द्वारा हाथ पकड़े जाने का उत्तरदायित्व तो हम गोपियां अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख चुकी हैं कि रास के मध्य में आपने उन लक्ष्मी जी को नहीं आने दिया था, जिनका हाथ आपने कर कमल से पकड़ा था। परन्तु हम तो अपना कान्ताभाव तभी पूर्ण समझेंगी, जब आप वह कर कमल हमारे सिर पर रख देंगे और ऐसा करने से फिर आप ऐसी हरकत नहीं करेंगे कि हमें बिलखती छोड़कर चले जावें। हमारा तो यही भय है। इसे शीघ्र दूर कीजिये।"

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥

गोपियाँ कहती हैं, "हे कृष्ण ! आप तो ब्रजवासियों के दुःखों को हनन करने वाले हैं। आप उनके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक तापों को नष्ट करते हैं। अतः आप ही वीर हैं। इन तीनों प्रकार को तापों को नष्ट करने की शक्ति आपके अलावा किसी वीर में नहीं है। आप अपने भक्तों के अभिमान एवं मान की भावना को अपनी मधुर मुस्कान से समूल नष्ट करने वाले हो।

हे कृष्ण, आपकी विशेषता यही है कि आपके भक्त को या निज जन को अगर किंचित् मात्र भी अहं आया—गर्व आया या अपने मान की भावना हुई—आप फिर तुरन्त उसके गर्व को समूल नष्ट कर देते हो। ऐसा करने से आपके भक्त को कष्ट अवश्य होता है। परन्तु कृष्ण उस कष्ट को जान-बूझ कर देते हैं क्योंकि वे गर्व से जो भक्ति नाश होने का कष्ट है उसे वे दूर करते हैं। अतः इस प्रकार आप (कृष्ण) भक्त पर कृपा करते हैं। अभक्तों एवं दानवों के गर्व हरण कृष्ण एक बार में करके समाप्त करते हैं। उन्हें भक्ति तथा प्रेम का अवसर कहाँ मिलता है? जब तक अहं भाव नष्ट नहीं होता है, 'दैन्यता' नहीं आ सकती है। जब तक मान की भावना—देह का गर्व, धन का गर्व रहता है, भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है और वास्तविक भजन भी नहीं हो सकता है—हे कृष्ण, तुमसे प्रेम नहीं हो सकता है।

इस मान, अभिमान को दूर करने का मार्ग जीव ज्ञान मार्ग द्वारा पाने का प्रयास करें, हम गोपियों को उनसे क्या सरोकार है? हमारा तो दृढ़ निश्चय है कि इस मान और अभिमान का दूर होना आपकी मुसकान के दर्शन के बिना हो नहीं सकता है। हे कृष्ण, आप हमें अपना लीजिये—यह अपनाना तभी सम्भव है जब आप हमको अपने सुन्दर, मनोहर एवं चित्ताकर्षक कमल मुख का दर्शन दें।

हे कृष्ण! आपके दिव्य, मधुर एवं सुन्दर कमल मुख का दर्शन तो अन्तिम उपलब्धि है। उसके प्राप्त होने के बाद फिर कुछ भी शेष नहीं रहता है।

जब तक आपके कमल मुख का दर्शन नहीं होता है, तब तक आप रूठे-रूठे ही रहते हो।

आप हम गोपियों से रूठते क्यों हैं?

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्री निकेतनम्॥
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्॥७॥

गोपियाँ कहती हैं, "हे कृष्ण। तेरा चरण कैसा है? जब जीव अपने समस्त अहंकार—अहं भाव—अभिमान या गर्व को त्याग देता है फिर आपको प्रणाम करता है। इस चरण के दर्शन करता है। तब तेरे इस चरण दर्शन से समस्त पाप उस जीव के नष्ट हो जाते हैं। जीव को गर्व तीन कारणों से मुख्यतया होता है। देह का अभिमान—मैं कैसा सुन्दर हृष्ट-पुष्ट हूँ। इस सुन्दर देह व देह बल से मैं क्या नहीं कर सकता हूँ। अहा! यह सुन्दरता और देह बल कैसा है? दूसरा गर्व इससे भी बढ़ कर धन का है। मैं कितना धनवान एवं सम्पत्तिवान् हूँ। मेरा मुकाबिला कौन कर सकता है? सैकड़ों मन्दिरों का निर्माण कर सकता हूँ। हजारों ब्राह्मणों को भोजन करा कर यही धन मुझे कितनी कीर्त्ति देता है। इस धन के प्रभाव से अच्छे-अच्छे साधु-सन्त भी मुझ पर कितनी कृपा करते हैं कि आये दिन वे, उनके भक्तगण मेरे घर की शोभा बढ़ाते रहते हैं। इस धन बल से मैं संसार में कैसे-कैसे आनन्द करता

हूँ। तीसरा कारण है मेरा मान एवं प्रतिष्ठा। जहाँ जाता हूँ, मेरा भव्य स्वागत होता है। उच्चासन मिलता है। घर में मेरा मान है। समाज में मेरा मान है। राज्य में मेरा मान है!

इस मान के साथ मैं, इस सुन्दर बलवान् देह के साथ एवं अपनी ऐसी मान प्रतिष्ठा के साथ मैं ठाठ से गोवर्धन परिक्रमा लगाता हूँ। भगवान् के दर्शन मन्दिरों में करता हूँ। इन्हीं अहंकारों के साथ पापनाशिनी गंगा में स्नान करता हूँ।

परन्तु हे कृष्ण! तू ऐसे अभिमानी जीव के पापों को नष्ट तुरन्त नहीं करता है। तू तो उसी जीव के पापों को अपने चरण दर्शन से तुरन्त नष्ट करता है जो इन तीनों कारणों से बिलकुल मुक्त हैं। जिनमें अहंकार किंचित् मात्र भी नहीं है। अहं भाव नष्ट करके जीव तेरे ही विग्रह के चरण दर्शन करके या ध्यान में भी तेरे चरण दर्शन करके शीघ्र समस्त पापों को नष्ट करता है। अन्यथा नहीं।

दैन्यतापूर्ण जीव जब तेरे चरण की शरण में ध्यान में भी जाता है, वह कोई पुण्य भी नहीं चाहता है। क्योंकि पुण्य प्राप्ति तो आगे के लिये बन्धन देती है। श्री चरण की सेवा के सामने पुण्यों के भोग, वैकुण्ठ आदि की कोई महत्ता नहीं है। श्री चरण दर्शन दैन्य जीव को आपकी सान्निध्यता देते हैं।

आपका यही श्री चरण हमारे बछड़ों के पीछे-पीछे चलता है। यही श्री चरण लक्ष्मी जी का घर है। लक्ष्मी जी इसी चरण की सेवा करती हैं। यही चरण आपने कालीनाग के फण पर रखा है। हे प्यारे! आप उस चरण कमल को हमारे वक्ष-स्थल पर रखिये और हमारे हृदय की ज्वाला को शान्त कीजिए।

आपका चरण कमल कंकड़, काँटों आदि की चिन्ता न करके वन में बछड़ों के पीछे-पीछे चलता है। दुष्ट कालीनाग के सर पर भी आपने इसे रख दिया है। वहाँ इस चरण ने मनोहर नृत्य भी किया है तो इन स्थलों के मुकाबिले से तो हमारा वक्ष-स्थल अधिक उपयुक्त है, क्योंकि वहाँ न काँटे हैं, न कंकड़। वहाँ आपके चरण कमल को कोई कष्ट नहीं होगा। हम उस चरण कमल को अपने मस्तक पर नहीं रखना चाहती हैं, क्योंकि हमारा कष्ट तो हृदय में है। मानसिक कष्ट नहीं है। हमें तो हृदय रोग है। हमारे हृदय की ज्वाला (विरह-दुःख) तो इस चरण कमल को हृदय पर रखने, हृदय को स्पर्श करने से ही शान्त होगी।"

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ।।८।।

गोपियाँ कहती हैं, "आपकी वाणी सुन्दर वाक्यों से युक्त है। आपकी सुन्दरता विश्व की समस्त सुन्दरता से ऊपर है। सुन्दरता गुण माधुर्यता का प्रधान अंग है। फिर आपके श्री मुख से निकलने वाले वाक्य क्यों न सुन्दर हों? सुन्दरता आकर्षित करती है। अपनी ओर जीव को खींचती है। अतः आपकी वाणी अति रसीली है।

इसकी ध्वनि कान में आते ही हमारा हृदय उछाल खाकर आपकी वाणी सुनने में अपने आपको भूल जाता है।"

हे कमल नयन ! यह आपकी सुन्दर, आकर्षक एवं रसीली वाणी मनोवैज्ञानिकों को भी रुचि करने वाली है। जो मनोवैज्ञानिक हैं, वे तो मन की गति को जानने वाले पंडित हैं। प्रकृति विधान के पंडित हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि ऐसे शुष्क लोगों को भी आपकी वाणी अति रुचिकर लगती है। क्योंकि इस वाणी का प्रभाव मन पर न पड़कर सीधा हृदय को स्पर्श करता है।

हे वीर ! हम गोपियाँ जो आपकी आज्ञाकारिणी हैं और मोहित अवस्था में रहती हैं, उनको अपने अधरामृत का पान कराइये। बिना इस अधरामृत के—बिना आपकी रसीली वाणी सुने, बिना आपकी रसीली बातें सुने हम सब दुःखी हैं। अतः हमारी इस दुःख की अवस्था को दूर कीजिये। यह तभी हो सकता है जब आप अपनी रसीली वाणी द्वारा हमसे वार्त्तालाप करें। उस समय हम इसको पीकर छक जावेंगी। हमें पूर्ण तृप्त कीजिये। जो आपके भक्त सेवक हैं, वे आपके स्वरूप का किंचित् मात्र ध्यान करते ही मोहित हो जाते हैं।

गोपियाँ वंशीध्वनि सुनते ही समस्त लोक मर्यादा को त्याग कर—सांसारिक आसक्ति को छोड़कर घोर रात्रि में वन में पहुँच गईं, जहाँ श्यामसुन्दर वंशीध्वनि कर रहे थे। जो भक्त कृष्ण का अधरामृत पीकर छकना चाहते हैं, उन्हें गोपियों के मानिन्द ही बनना पड़ेगा।

संसार की समस्त आसक्ति, मोह एवं मान-अभिमान को त्यागना पड़ेगा तभी कृष्ण अधरामृत का पान हो सकता है; अन्यथा नहीं। इस प्रकार के आचरण से जीव पागल हो जाता है। इस पागलपन में ही वह त्याग कर सकता है। सच्ची सेविका व सेवक को तो प्रिय वाणी श्रवण करते ही मादकता उत्पन्न हो जाती है।"

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्॥
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥९॥

गोपियाँ कहती हैं, "हे कृष्ण तेरा कथामृत कैसा है। तपे-तपाये जीवों को जीवन देता है। जो तुझमें ही रत हैं। दिन-रात तेरी ही शरण हैं। अपने समस्त क्रिया-कलापों को तुझे ही समर्पण करते रहते हैं। ऐसे जीवों को यह कथामृत और आनन्द देता है। क्योंकि तेरे आनन्द की तो सीमा है ही नहीं। इधर भक्त की उत्कण्ठा की सीमा नहीं है। तेरा सेवक व भक्त सदैव अतृप्त रहता है और तेरा कथामृत नित्य नूतन है—अतृप्ति को और बढ़ाता है। जितनी अतृप्ति बढ़ती है, भक्त को उतना ही आनन्द और आता है। उतनी ही गति से तेरे सान्निध्य में आता है। तेरा कथामृत उन लोगों का भी जीवन है जो विरह से जले हुये हैं क्योंकि विरह के समय मिलन सुख की पूर्ति तो नित्य नूतनता सहित तेरा कथामृत ही बनाता है। ऐसे (तेरे) विरह से तृप्त प्राणियों (भक्तों) का तेरी लीलाओं का सुनना एवं चिंतन

करना व ध्यान करना ही आनन्द देता है। जितना-जितना लीलागान करते हैं, उतनी-उतनी विरह की अग्नि कुछ भूल में पड़ती रहती है क्योंकि तेरे कथामृत से वह समय आनन्द में व्यतीत होता है। तेरा कथामृत कवियों के द्वारा गाया हुआ भी है। वे कवि तो तेरे अविचल भक्त हैं। ऐसे भक्तों द्वारा तेरा कथामृत गाया गया है।

यह कथामृत समस्त पापों को हरण करने वाला है। जो तेरी लीलाओं का गायन करते हैं, सुनते हैं, सुनाते हैं—उनके पूर्व जन्मों के समस्त पाप क्षय हो जाते हैं। इस कथामृत (**तेरी लीलाओं का वर्णन**) से परम कल्याण होता है। यह परम-कल्याण तेरी सेवा, तेरा प्रेम एवं तेरी सान्निध्यता है। यह सान्निध्यता ध्यान में तो प्राप्त हो ही जाती है। फिर प्रबल उत्कण्ठा पैदा होना अनिवार्य है।

ये कथामृत भक्तों को आपके द्वारा ही प्राप्त हुआ है। यह परम मधुर परम सुन्दर एवं परम विस्तृत भी है। जो प्राणी तेरे कथामृत का पान करते हैं (**सुनते व सुनाते हैं**) वे ही सच्चे दानी हैं। वे ही बहुत देने वाले हैं। ऐसे लोग ही पृथ्वी पर सबसे बड़े दानी व दाता हैं। यानी कृष्ण कथा को सुनाना ही पृथ्वी पर सबसे बड़ा दान है। स्वधर्माचरण करने वालों का द्रव्य दान तो इस कथामृत के दान के सामने टिक ही नहीं सकता है। सभी प्रकार के अन्य दान तो स्वधर्म पालन में आ जाते हैं। अतः इन स्वधर्म पालन करने वाले दानियों की गति तो वैकुण्ठ तक सीमित है। परन्तु कृष्ण कथामृत का पान कराने वाले, लीलाओं को सुनाने वालों की गति असीमित है क्योंकि श्रीकृष्ण-शरणागति-सान्निध्यता-सेवा-प्रेम की सीमा नहीं है। अपार है—अगाध है—अगम्य है।"

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्॥
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि॥१०॥

गोपियाँ कहती हैं,"हे प्रिय ! आपका मुसकराना, प्रेमपूर्वक देखना और आपकी नाना प्रकार की क्रीड़ायें हमको आनन्द में मग्न कर देती हैं। आपकी यह बातें ऐसी हैं जो बताती हैं कि हम आपकी दासी हैं। आप हम पर परम प्रसन्न हैं। आपको हम सुख प्रदान करने में कारण हैं। अतः आपका आनन्द रूपी प्रसाद हमको मिला। आनन्द ही तो आपका वास्तविक स्वरूप है। आपने इस प्रकार अपने स्वरूप को ही हमें प्रदान किया है। आपकी इन क्रिया-कलापों का, आपके प्रेममयी निजी व्यवहार का जब हम ध्यान करती हैं तो हमें वही आनन्द आपके ध्यान में मिलता है। हमारा ध्यान भी मंगलमय हो जाता है। क्योंकि इन सब बातों का ध्यान ही मंगलमय है। हमारा साध्य ही हमको सुलभ है। तो उस साध्य का ध्यान भी सुलभ है। अतः हमारे पास अन्य चारा भी नहीं है, सिवा आपका ध्यान करने के क्योंकि आपका दर्शन तो प्राप्त हो नहीं रहा है। अतः जो आनन्द दर्शन से प्राप्त होता है, वही आनन्द आपके ध्यान से प्राप्त हो जाता है।"

श्री गोपियों का यह कथन भक्तों को साधना का ऐसा मार्ग बताता है कि श्री कृष्ण का साक्षात्कार तो इन भौतिक नेत्रों से महान् कठिन है। जब

तक उनकी अहैतुकी कृपा न हो और दिव्य चक्षु न प्राप्त हों, ऐसी दशा में कृष्ण के कमल मुख का ध्यान करना—उनकी मन्द-मन्द मुस्कान का ध्यान करना—उनकी समस्त बिहार लीलाओं का ध्यान करना वही आनन्द देता है, जो आनन्द साक्षात् में प्राप्त होता है। अतः भक्तों को, सेवकों को नाम जप करते समय प्रभु की समस्त लीलाओं का ध्यान करना चाहिये। निष्ठापूर्वक नाम जप ध्यान के साथ सम्बन्धित है। विरह का कष्ट ध्यान द्वारा अवश्य दूर होता है। जीव का भजन में मन नहीं लगता है क्योंकि निष्ठा नहीं, लीलाओं में प्रेम नहीं, फिर ध्यान नहीं करना। मन कैसे लगे ? हृदय में गुदगुदी है, हृदय में विरह है। हृदय में भगवान की भूख है ? प्यास है ? नहीं, तो भजन कैसे हो ? गोपियों का विरह हमारी समस्या को हल करता है। मन विचारा क्या करेगा, अगर हृदय में जागृति नहीं है।

आगे गोपियाँ कहती हैं, "हे कपटी ! हे छलिया ! (ये शब्द प्रेम की वामता में अत्यधिक प्रेम के द्योतक हैं। चमत्कारिक कृष्ण की लीला के छल में गोपियाँ नहीं आ सकती हैं। उनको तो उनकी वास्तविक सान्निध्यता एवं सेवा चाहिये। चमत्कार से उन्हें क्या प्रयोजन ?) [अगर भक्त या कृष्ण सेवक किसी भी चमत्कार में फँस गया तो सेवा से दूर हो जावेगा। चमत्कार से सेवा व सान्निध्यता प्राप्त होती है तो ठीक है] आपकी संविद शक्ति (**जो कृष्ण की स्वयं भूता शक्ति है**) के द्वारा आपने अपने एकान्त मिलन के समय हृदयस्पर्शी बातों का ज्ञान कराया। उनसे अवगत कराया। [**कृष्ण को स्वयं कुछ नहीं ज्ञान है। केवल संविद शक्ति ही उन्हें ज्ञान कराती है और इसी शक्ति द्वारा वही ज्ञान आप अपने सेवक व सेविकाओं को देते हैं। यही तो आविर्भाव कहलाता है**] इस ज्ञान ने हमारे हृदय में उथल-पुथल पैदा कर दी है। शान्त सागर में जैसे लहरें उथल-पुथल लाती हैं, इसी प्रकार तेरी संविद शक्ति ने हमारे हृदय में उथल-पुथल पैदा कर दी है। अतः इन सब बातों को याद कर-करके हम अत्यन्त क्षुब्ध हो रही हैं। जब तक आपकी ह्लादिनी शक्ति क्रियाशील नहीं होती है, तब तक यह उथल-पुथल एवं क्षुब्धता बनी ही रहेगी।"

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ।।११।।

हे नाथ, जब आप ब्रज से गाय-बछड़ों को चराते हुये चलते हो। (**आप स्वधर्म का पालन करते हो**) आप गोवर्धन पूजा से पूर्व बाबा नन्द को इस कुल के चार स्वधर्म बता चुके हो। अतः आप अपने द्वारा अवगत किये धर्म का पालन करने हेतु गाय-बछड़ों को चराने जाते हो। पैरों में जूता नहीं पहिनते क्योंकि आप तो धर्म का पालन करते हो। आपने ही तो माता यशोदा को बताया था। जब प्रथम दिन गोचारण के लिये जाते समय मइया ने आपसे जूता पहिनकर गोचारण को जाने का आग्रह किया था, तो आपने कहा था, "मइया ! हमारी गौयें भी तो नंगे पैर जंगलों में जावेंगी तो मैं कैसे जूता पहिनकर जा सकता हूँ ? गो सेवा नंगे पैरों ही करना स्वधर्म

है।" नाथ ! ये सब बातें तो हम जानती हैं। फिर भी हम देखती हैं कि आपके सुन्दर चरण में पत्थरों पर उगी हुई घास के कठोर अंकुर चुभते हैं। अतः आपके कमल चरणों को बड़ा कष्ट होता है। इसे जानकर हे नाथ ! हमारा मन व्याकुलता को प्राप्त हो जाता है। यह स्वाभाविक है (**प्रेम जगत् की यही दशा है—फिर भी दिव्य अप्राकृतिक प्रेम का क्या कहना। प्रेम में प्रिय का सुख ही जीव का सुख होता है।**) परन्तु गोपियों को प्रीतम का दुःख महान् दुःख देता है। इस दुःख के कारण उनके मन पर चोट पड़ती है। गोपियों का हृदय तो प्रीतम के साथ समर्पित है। वह तो उनके पास रहा नहीं, वह तो प्रीतममय हो गया। उस पर चोट लगने का प्रश्न ही नहीं है। मानसिक पीड़ा होती है। इन पीड़ाओं को गोपियाँ भगवान् की लीलाओं का स्मरण करके दूर करती रहती हैं।

उनके मन में जब लीलायें प्रवेश कर जाती हैं तो पीड़ा उतना कष्ट नहीं देती है। क्योंकि पीड़ाओं का भान भी लुप्त हो जाता है।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्।।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ।।१२।।

हे वीर ! सूर्यास्त के समय जब आप गोचारण से लौटते हो तो हम टेर कदम्ब पर ही आपके दर्शन हेतु रुक जाती हैं। क्योंकि दिन भर आपकी लीला स्मरण करके एवं गायन करके समय काटती हैं (**इसी प्रकार भक्तों को भी दिन काटना चाहिये**), परन्तु आपसे मिलन व दर्शन की उत्कट उत्कंठावश हम सूर्यास्त से पूर्व ही रास्ते में आपके दर्शन हेतु पहुँच जाती हैं। तो हम देखती हैं कि आपके कमल मुख पर नीली जटायें लटक रही हैं और आपका कमल मुख घनी धूल से, ब्रज रज से ढका हुआ है। आपके ऐसे कमल मुख का दर्शन करते ही बार-बार 'काम' भावना पैदा हो जाती है। आपके इस सौन्दर्य के दर्शन से मिलन की आकांक्षा एवं दिव्य प्रेम पैदा होता है।

गोपियों का 'काम' तो अप्राकृतिक काम है। प्राकृतिक काम तो त्रिगुणात्मयी अवस्था में ही होता है। कृष्ण तो रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण रहित हैं। वहाँ प्राकृतिक 'काम भावना' का लवलेश भी नहीं हो सकता है। अतः 'उत्कट उत्कण्ठा, अप्राकृतिक प्रेम, कृष्ण दर्शन, एवं कृष्ण के किसी अंग का दर्शन' ध्यान में हो यही 'काम भावना', यही मिलन की उत्कट उत्कंठा भक्तों एवं सेवकों के हृदय में पैदा करता है तो प्रत्यक्ष दर्शन की तो बात ही क्या है ? (इसका अनुभव वही जीव कर सकता है जो विशुद्ध गोपी भाव से कृष्ण के दर्शन ध्यान में करता है) कृष्ण दर्शन के समय जो हृदय की गति होती है उसे गोपियाँ ही जानती हैं। ध्यान में दर्शन के समय की गति को भक्त ही जानती या जानते हैं। यह विषय असाधारणतया अति गोपनीय व मर्मस्पर्शी है। बिना गोपी भाव के इस रस का आस्वादन न तो किसी ने किया है, न कोई कर सकता है। **ध्यान नहीं लगता है।** ध्यान कैसे लगे ? ध्यान लगाना रसगुल्ला नहीं है। गोपी भाव

लाइये। तुरन्त आनन्द का अनुभव होगा। इस रस का अनुभव अन्य साधनों से नहीं हो सकता है, चाहे कितना भी प्रयास कर लो। समाधि लग जावेगी, परन्तु कहाँ समाधिस्थ अवस्था, कहाँ यह रस ?

नारदजी को भी पूर्णरूपेण गोपी भाव बनाकर इस दिव्य प्रेम की प्राप्ति हुई थी। गोपेश्वर शिव सदा गोपी भाव में निमग्न रहते हैं और दिव्य प्रेम का रसास्वादन करते रहते हैं।

"गोपेश्वर महादेव की जय !"

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ।।१३।।

गोपियाँ कहती हैं, "हे हमारी आधि (**मानसिक व्यथा**) को नष्ट करने वाले प्रिय ! मन की गति निराली है। अगम्य है। सूर्य की किरणों की गति से भी तेज है। पवन से भी गति बढ़कर है ! मनोगति अति चंचल है। योगी लोग ध्यान द्वारा मनोगति पर नियंत्रण करते हैं। हम गोपियाँ योग को क्या जाने ? न योग साधना में हमारी रुचि है। हे किशोर कृष्ण प्रीतम ! तेरे दर्शन से मनोगति लुप्त ही नहीं होती है, अपितु चंचलता का लेश भी नहीं रहता है (**गोपी भाव से भक्ति और सेवा का यही फल है**)। प्रीतम् ! आप सन्मुख हुये नहीं कि मन शून्यावस्था को प्राप्त हो जाता है। यह है प्रेम का हृदय में उदय होना। आधि नष्ट हो जाती है।

आपका चरण कमल श्री लक्ष्मीजी द्वारा पूजित है। जब आपका चरण कमल पृथ्वी पर पड़ता है तो पृथ्वी पुलकित होकर (**सात्त्विक विकार**) वहाँ हरी-हरी दूब उगा देती है। कृष्ण स्पर्श से साक्षात् ध्यान में अष्ट सात्त्विक विकार पैदा हो जाते हैं। पृथ्वी का कृष्ण प्रेम अन्दर से उमड़ कर बाहर प्रकट होता है। यह प्रेम का प्राकट्य केवल कृष्ण सुख विधान के लिये होता है। आपके चरण कमल का ध्यान समस्त आपत्तियों को नष्ट करता है। यह शान्ति व परम कल्याण प्रदान करता है।

अतः हे रमण ! उन्हीं चरण कमलों को हमारे हृदय पर रख दीजिये। इससे मन की आधि स्वयं नष्ट हो जावेगी। इस आधिरूप रोग का निवारण तभी होगा जब आपका चरण हमारे वक्षस्थल को स्पर्श करेगा। इस स्पर्श मात्र से मन की चंचलता तुरन्त नष्ट हो जावेगी।"

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ।।१४।।

गोपियाँ कहती हैं, "हे वीर ! आप अपना अधरामृत हमको पिलाइये। छक कर दीजिये। हमारी पूर्ण तृप्ति कर दीजिये (**हमारी सदैव अतृप्त दशा जो सहनीय नहीं है, रहती है**)। हम सभी अतृप्त हैं। इस अधरामृत का वितरण हम सबको कीजिये। भक्त एवं आपके अनन्य सेवक जन सदैव अतृप्त रहते हैं। प्रीतम तेरा अधरामृत भक्तों एवं सेवकजनों को पूर्ण तृप्ति देता है।

यह अधरामृत हम गोपियों के अन्दर सुरत काम उत्पादक है। यानी दिव्य काम पैदा करने वाला है। इसी में तो आपका रमण होता है। यह आपके प्रति उत्कट उत्कंठा देता है। आपका नित्य स्मरण एवं ध्यान कराने वाला है यह अधरामृत। इस अधरामृत का पान करना ही आपका सुख विधान है।

यह अधरामृत सांसारिक रोगों को नाश करता है, उनका भान तक नहीं होता है—भक्तों को ये सांसारिक रोग रत्ती भर भी पीड़ा नहीं पहुँचाते हैं—परन्तु हम गोपियों के मिलन की अभिलाषाओं में जो बाधा होती है (**ये मानसिक बाधायें**) इनको समूल नष्ट करता है। विरह शोक को दूर भगाता है।

आपकी बजती हुई वेणु ने इसे भली-भाँति पान किया है। जब तक वेणु आपके कर कमल में रहती है, आपके स्पर्श का आस्वादन करती रहती है। कुक्षि में रहती है तो कुक्षि स्पर्श का आस्वादन करती है। यह आस्वादन वेणु को अति प्रिय है। क्योंकि प्रीतम के बदन स्पर्श का रस इस गाँठगठीली छिद्रदार वेणु को प्राप्त है। परन्तु वेणु तो इतनी सौभाग्यवती है कि तेरे अधरामृत का पान उसे पूर्ण तृप्ति के साथ तुरन्त मिल जाता है। अधरामृत पान करते-करते जब वेणु की ध्वनि निकलती है, उस ध्वनि के सुनते ही हम गोपियों को दिव्य काम पैदा हो जाता है। पागल होकर हे प्रीतम तुझ से मिलन के लिये दौड़ती हैं। गौ जब उस ध्वनि को सुनती है तो तृण जो मुह में है, मुँह में ही रहता है। खाना बन्द कर देती है। यमुना का प्रवाह शान्त हो जाता है। पशु-पक्षी स्तब्ध हो जाते हैं। यह प्रभाव किसका है—ध्वनि में तेरे अधरामृत का पूर्णरूपेण आवेश जो है। जीव सांसारिक राग ध्वनि सुनते ही विलायमान हो जाते हैं। अहा! यह अधरामृतमयी ध्वनि प्राणियों के समस्त पारमार्थिक रागों (साधनाओं) को भी नष्ट कर देती है। जिन भक्तों या आपके निज जनों ने इस अधरामृत का पान किया है, उनको फिर किसी प्रकार का राग (**ज्ञान-योग आदि-आदि**) नहीं सताते हैं। उनकी इच्छा इनमें नहीं रहती है। योगाभ्यास का राग नहीं रहता। तपस्या करने का राग नहीं रहता है। वैकुण्ठ जाने का राग भी दूर भाग जाता है। मोक्ष को तो तेरे अधरामृत का पान करने वाले ठोकर देकर आगे चलते हैं। आपके अधरामृत का पान करके कोई वांछना शेष नहीं रहती है।

अतः हे प्राणप्रिय प्रीतम! हम गोपियों को उसी अधरामृत का पान कराइये।"

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्॥
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥१५॥

गोपियाँ कहती हैं, "हे प्रिय! जब आप वन में विहार के लिये दिन में भ्रमण करते हैं उस समय हम आपके दर्शन एवं सान्निध्य से वंचित रहती हैं। उस समय हम आपकी लीलाओं का स्मरण एवं गायन करती रहती हैं। परन्तु हमारी लालसा आपसे

मिलने और आपके दर्शन की इतनी प्रबल होती है कि स्मरण और लीला गायन उसकी पूर्ति नहीं कर पाते।

आपके दर्शन न होना एक त्रुटि है। अभाव है। इस अभाव के कारण आपके दर्शन न मिलने वाले भक्तों व सेवकों को तथा हम गोपियों को एक-एक क्षण एक-एक युग के समान मालूम होता है। यह समय आपसे वियोग का है। अतः वियोग का प्रति क्षण युग के समान प्रतीत होता है। आपके कमल मुख के दर्शन की उत्कंठा अति बलवती होती है। कारण कि वियोग की तीव्रता—मिलन सुख की भावना ही दर्शन की उत्कंठा वर्धक है।

जब आप सन्ध्या समय वन से लौटते हो तो घुँघराले वालों वाले आपके कमल मुख का जब हम दर्शन करती हैं तो हमारी आँखों के पलक अधिक टकटकी लगाने के कारण गिर जाते हैं। जब पलक गिर जाते हैं, उस क्षण आपके दर्शन नहीं कर पाती हैं। तब हमें ज्ञात होता है कि ब्रह्मा मूर्ख है, जिसने पलक बनाये हैं।"

अहा ! गोपी प्रेम का स्वरूप कैसा विचित्र है कि पलक बनाने वाले को मूर्ख बनना पड़ रहा है।

वास्तव में बात ठीक भी है। जितनी व्याधि, आधि एवं आसक्तियाँ या वासनायें हैं, वे कृष्ण सान्निध्यता प्राप्त करने में रोड़ा हैं। अतः यह प्रकृति जिसमें रजोगुण; तमोगुण एवं सतोगुण का प्रभाव भरा हुआ है—किसी भक्त या प्रेमी द्वारा सहन नहीं हो सकता है। क्योंकि दिव्य एवं अप्राकृतिक प्रेम प्राप्त करने के साधन में ये बाधायें महान् रोग हैं।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-नति विलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ।।१६।।

गोपियाँ उस दशा का वर्णन करती हैं जिसमें वे वहाँ वंशी ध्वनि सुनकर घोर रात्रि में प्रिय के पास आईं।

हे अच्युत ! हम गोपियाँ अपने पुत्रों, पतियों, भाइयों, कुल के समस्त सम्बन्धियों की आज्ञा का उल्लंघन करके आपके पास आई हैं। ऐसा करने में हमें लोक-लज्जा एवं कुल-लज्जा का भी त्याग करना पड़ा है। कुलीन स्त्रियाँ कहीं भी स्वतन्त्र नहीं हैं। बालकपन में पिता, गृहस्थ अवस्था में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र की देखरेख में रहना ही उनका धर्म है। तेरे सामने आने में यह सब बंधन ताक में रखे गये हैं। भक्त को भी यह सब सांसारिक बन्धन त्याग करने पड़ते हैं। आप भी कृपा करके अपने भक्तों व सेवकों के यह बन्धन काटकर कृपा करते हैं।

आपकी बंशी की ध्वनि ने हमको इतना मोहित कर दिया कि ये बंधन त्यागने पड़े। परन्तु इस प्रकार मोहित होने में हमारा क्या अपराध है ? इसमें बंशी की भी कुछ विशेषता नहीं है। महत्त्व तो आपके उस अधरामृत का है जो वंशी द्वारा पान किया गया, जिसके प्रतिफल ध्वनि ने हमको आकर्षित कर लिया। हम आपकी चाल को खूब समझती हैं।

हे धूर्त्त ! स्त्रियों (गोपियों) को रात्रि में इस प्रकार अकेली कौन छोड़ सकता है ? इस प्रकार छोड़ने में जो आपकी चाल व धूर्त्तता है (**अविवेक द्वारा कर्म करना धूर्त्तता है**) । पहिले मोहित करके पास खींच लेना फिर उनमें (हमको) धता देना अविवेक का काम है । यह गोपी की प्रेम वामता का प्रत्यक्ष रूप है । इस प्रेम वामता में प्रीतम के लिये जो कुछ भी कहा जावे उसमें दोष कहाँ है ? प्रेम में दोष के लिये स्थान नहीं है । यही प्रेम की विचित्र दशा है ।

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसितानन प्रेमवीक्षणम् ।।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ।।१७।।

अब गोपियों की दशा अति विचित्र एवं भाव युक्त होती है । भाव तभी बनता है जब निष्ठा-दास्यता-असंकोच-लालन-पालन की उत्कट प्रवृत्तियों का एकदम उदय होकर समावेश होना यानी शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य का समावेश होकर माधुर्य में आना और भाव बनना । यह भक्त की भाव वाली पूर्ण स्थिति है । गोपियां श्याम की बिना मोल की दासी हैं—निष्ठा की तो मूर्ति हैं—संकोच तो उनको छू तक नहीं गया है । खिलाने-पिलाने में सर्वोपरि हैं अतः गोपनीयता रहित अवस्था को प्राप्त हुई हैं । भाव युक्त हैं—पूर्ण हैं । साधना सफल है । ये भाव शुष्क ज्ञान एवं योग आदि से प्राप्त नहीं हो सकता है । ये तो अविचल प्रेम, शुद्धा भक्ति एवं अनन्य सेवा ही से प्राप्त होता है ।

गोपियाँ कहती हैं, "हमारे हृदय में जो भाव उत्पन्न हुआ है उसे आपने एकान्त में बता दिया है । आपकी स्वरूपभूता शक्ति संविद ने आपके द्वारा हमें अवगत कराया है । सबके सामने खुले रूप से आप अवगत नहीं करा सकते हैं क्योंकि हमारे भाव में आपको कोई दोष नहीं अवगत हुआ है । इस प्रकार भाव को विशुद्ध भाव बनाये रखने के कारण आपने एकान्त में अवगत कराया है ।

प्रेम भरी चितवन से, हँसते हुए कमल मुख के दर्शन देते हुए हमारे भाव को एकान्त में अवगत कराने से, हमारा हृदय मोहित हो रहा है । हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है । हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है । हमारा हृदय रूप भाव तो आपके पास है । उसका ज्ञान भी आपको है तथा आपने अवगत भी करा दिया है । ऐसी दशा में हमारे पास वह हृदय तो रहा नहीं, अतः मुग्धता का स्थान अब हमारा मन ही तो है ।"

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ।।१८।।

गोपियाँ कहती हैं, "हे अंग ! (**कृष्ण का अंग गोपियाँ हैं—उनके बायें अंग से श्री राधिका का प्रादुर्भाव हुआ—श्री राधिका के रोमों से गोपियों का प्रादुर्भाव हुआ**) हे हमारे अत्यन्त आदर के प्राप्त ! (अंग होने से अत्यन्त आदर के प्राप्त हैं । गोपियाँ स्वकीया होते हुए परकीया भाव में रहती हैं । अतः कृष्ण अंग हैं । ठीक ही है ।)

आपका प्राकट्य ब्रजवासियों के पापों के नाश करने में समर्थ है। आप ब्रज-वासियों के पापों को दूर भगाने वाले हैं। जिसके नाम लेने पर पाप नष्ट होते हैं, उसका नित्य दर्शन-स्पर्श-सान्निध्यता भी पाप के नष्ट करने में क्यों न समर्थ हो ?"

यहाँ गोपियाँ कृष्ण प्राकट्य का मुख्य उद्देश्य बताती हैं। यह उद्देश्य ब्रज-वासियों के पापों को नष्ट करना तथा विश्व मंगल करना है।

कृष्ण का प्राकट्य समस्त विश्व में भक्ति व प्रेम प्रदान करता है। कृष्ण समस्त विश्व में हैं। समस्त विश्व कृष्ण में है।

गोपी कहती हैं, "हमारी लालसायें आपकी आत्मा में लगी हुई हैं।" (गोपियाँ कृष्ण की आत्मा हैं) गोपियों की लालसायें कृष्ण की आत्मा में लगना स्वाभाविक है। और कहाँ लगेंगी ?

गोपियों का यह कथन आधुनिक आलोचकों के सोचने का विषय होना चाहिए।

हे कृष्ण ! हमारे हृदय रोग को थोड़ा ही दूर कर दीजिए। कुछ थोड़ा सा इलाज हमारे हृदय रोग का कर दीजिये। गोपियों के हृदय का रोग यह था कि विरहाग्नि की ज्वाला बिना दर्शन के हृदय को महान् क्लेश दे रही थी। वे कहती हैं, "दर्शन दीजिये, इलाज हो जावेगा।"

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहिकर्कशेषु ॥
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥

गोपियाँ कहती हैं, "हे प्रिय ! आपके सुन्दर कमल चरण को हम गोपियाँ अपने कठोर स्तनों पर धीरे-धीरे रखती हैं क्योंकि हमें डर है कि आपके कोमल चरणों को कठोर स्तनों पर रखने से कहीं चोट न लग जावे। हम तो आपके कष्ट का इतना ध्यान रखती हैं परन्तु आप इन कोमल चरणों से वन-वन में भ्रमण करते हो। क्या आपको कष्ट नहीं होता है ?

आप ही हमारे जीवन के आधार हैं। आपके ही आश्रय पर हमारा जीवन निर्भर है। जीव का आश्रय तो कृष्ण हैं। इस आश्रय के बिना जीव का क्या ठिकाना है ?" गोपियों की आँखें चकरा रही हैं। इस प्रकार उनका मन भी चकरा रहा है।

इस गोपी गीत के १९ श्लोकों का अर्थ सहित पाठ करना चाहिये। केवल कृष्ण भक्तों को सुनाना चाहिये। जो भगवान् के भक्त नहीं हैं, उनके सामने इन गीतों का प्रवचन कदापि न करो।

साधना का सार—भक्ति का सार केवल कृष्ण सुख विधान करना है। अपने सुख का तो किंचित् मात्र भी ध्यान नहीं होना है। कृष्ण सेवा ही भक्ति का सार है। **नाम जप, कीर्त्तन, लीलाओं का स्मरण,** लीलाओं को **भक्तों को सुनाना एवं ध्यान में लीलाओं का स्मरण करना ही गोपी गीतों का सार है।**

॥ समाप्त ॥

मानसिक अष्ट याम सेवा करने वाले प्रेमियों से निवेदन है कि गोपी गीत के सार के अनुसार ही मानसिक सेवा स्मरण में चलें।

अपने दैनिक जीवन को भगवान् के योग्य बनाने के लिये कुछ बातें दी जाती हैं। अनुभूतियाँ ही जीवन का सार हैं।

कृष्ण के नामों का कीर्त्तन करना मुख्य है। नाम कीर्त्तन में अटूट शक्ति है, जिसके द्वारा प्रेम सम्पत्ति प्राप्त होती है।

नाम संकीर्त्तन से प्रारब्ध पाप भी नष्ट हो जाते हैं, अगर उपासक अपनी ही इच्छा से बिना अभिमान के दीन होकर संकीर्त्तन करते हैं तो।

जो कभी-कभी कीर्तन करते हैं या दूसरों के उकसाने से करते हैं उनके कीर्तन से केवल संचित पाप ही नष्ट होते हैं।

कृष्ण नामों का कीर्त्तन एवं संकीर्त्तन ही कलियुग में साधन एवं साध्य दोनों हैं।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ॥
कलौ नास्त्येव नास्त्व नास्त्येव गतिरन्याथा ॥

श्रीकृष्ण के समस्त स्वरूप की एक साथ स्फूर्ति होना ही ध्यान का पूर्ण तात्पर्य है। जब श्रीकृष्ण के रूप, गुण, माधुर्य आदि में किसी एक अंग की याद आती है—उसे स्मृति कहते हैं। ध्यान करते समय श्रवण, कीर्त्तन, दर्शन आदि जब मन में बाहर की तरह प्रकाशित होने लगें तो इस प्रकार का ध्यान बाह्य कीर्त्तन आदि की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

कीर्त्तन ध्यान का आनन्द बढ़ाता है। ध्यान से कीर्त्तन का सुख बढ़ता है। ये दोनों एक दूसरे की वृद्धि करने वाले एवं पोषक हैं। ये दोनों एक ही हैं। चित्त में शान्ति तभी प्राप्त होती है जब जीव अपनी अत्यन्त आसक्ति वाली वस्तु का ध्यान करता है। अत्यन्त आसक्ति तो कृष्ण में ही है।

मन सब इन्द्रियों का राजा है। अति चंचल, प्रकांड एवं बलवान है। मानसिक भक्ति इस मन से ही सिद्ध होती है। जब अनेकों महती प्रयास होते हैं तब मन मानसिक भक्ति के योग्य शुद्ध होता है। तभी मानसिक भक्ति का उदय होता है। इसी कारण स्मरण भक्ति को उत्तम बताया जाता है।

परन्तु वास्तविक बात यह है कि कीर्त्तन भक्ति स्मरण से श्रेष्ठ है। स्मरण भक्ति तो मन में ही उदय होती है। परन्तु कीर्त्तन भक्ति जिह्वा, कर्ण, मन में उदय होते-होते हृदय में गुदगुदी पैदा कर देती है। और फिर अन्य जीवों को जो कीर्त्तन सुनते हैं या सम्पर्क में आते हैं, बहुत सुख एवं आनन्द प्रदान करती है। उनका भी कल्याण हो जाता है।

सबसे महत्व की बात है श्री गोपाल के चरणारविन्दों की उपासना—इस उपासना से बढ़कर और कोई साधन नहीं है—इस उपासना में नाम संकीर्त्तन अधिक

है—इस प्रकार की उपासना बांछा से अधिक फल प्रदान करती है—यह उपासना कृष्ण की लीला-स्थलों में श्रद्धापूर्वक, प्रेमपूर्वक निवास करने से—दर्शन करने से भली प्रकार सम्पन्न होती है। अतः वृन्दावन धाम इस उपासना के लिये सर्वोत्तम स्थल है।

रास क्या है ? कृष्ण की माधुरी जब चरम सीमा रूप धारण करती है तो उसे रास कहते हैं—यह माधुरी ४ प्रकार की है—**रूप माधुरी, वेणु माधुरी, लीला माधुरी** एवं **प्रेम माधुरी**। ये चारों माधुरियाँ मिलकर पूर्ण रास प्रकट करती हैं। कृष्ण की भगवत्ता का अति गोपनीय—अत्यन्त ऊँचा सार है। जब यह सार अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँचता है, तभी रास का रूप धारण कर लेता है। अतः यही रास कृष्ण हैं।

श्रीकृष्ण की कृपा बिना प्रेम प्राप्त नहीं हो सकता है। यह कृपा कहीं-कहीं तो अकस्मात् होती है—कोई-कोई साधन द्वारा प्राप्त करते हैं।

श्रीकृष्ण से बढ़ कर कोई दानी नहीं है—जब कृष्ण किसी भक्त से प्रेम समर्पण कराना चाहते हैं तो वे उसे दान रूप में विरह प्रदान करते हैं। यह तो कृष्ण का एक प्रकार का अनुष्ठान है।

मूल बातें साधक के लिये—

(१) सार विद्या कौनसी है ?	श्रीकृष्ण भक्ति ही सार विद्या है।
(२) जीव की सबसे बड़ी कीर्त्ति कौन सी है ?	श्रीकृष्ण का प्रेमी भक्त कहलाना सबसे बड़ी कीर्त्ति है।
(३) जीव की सबसे बड़ी सम्पत्ति क्या है ?	वही धनी है, जिसके पास श्री राधाकृष्ण प्रेम रूप सम्पत्ति है।
(४) कौन सा दुःख महान् है ?	श्रीकृष्ण के भक्त का विरह या वियोग दुःख महान् दुःख है।
(५) मुक्तों में किस जीव को मुक्त मानना चाहिये ?	जिसको श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्त है, वही मुक्तों में शिरोमणि है।
(६) गानों में कौनसा गान जीव का स्वरूप धर्म है ?	श्री राधाकृष्ण की प्रेम केलि का गान ही सब जीवों का सार व रहस्य है।
(७) संग किसका श्रेयस्कर है ?	श्रीकृष्ण भक्त का संग ही श्रेयस्कर है।
(८) किसका स्मरण हर समय करना चाहिये ?	श्रीकृष्ण नाम गुण और लीलाओं का हर समय स्मरण करना चाहिये।
(९) किसका ध्यान करना चाहिये ?	श्री श्यामाचरण के चरण कमलों का ध्यान करना मुख्य कर्त्तव्य है।
(१०) सब कुछ त्याग करके जीव को कहाँ वास करना उचित है ?	ब्रज भूमि वृन्दावन में, जहाँ नित्य रास-लीला होती है।

(११) श्रवण के लिये सर्वश्रेष्ठ श्रवण क्या है ?	श्री राधाकृष्ण की प्रेम केलि ।
(१२) कौन सा इष्टदेव प्रधान है ?	श्री राधाकृष्ण ही प्रधान उपास्य देव हैं ।
(१३) मुक्ति की बांछा वाले जीवों की क्या गति होती है ?	वृक्षादि देह प्राप्ति के समान है। वृक्ष प्रकृति का साधारण आनन्द अनुभव करते हैं परन्तु आनन्द की विचित्रता का वे अनुभव नहीं कर पाते । जीव ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। परन्तु ब्रह्म की आनन्द वैचित्री का अनुभव नहीं कर सकते हैं ।
(१४) भक्ति की बांछा वालों की क्या गति होती है ?	भक्त अपने भाव के अनुकूल पार्षद देह प्राप्त करके श्री कृष्ण संग प्राप्त करते हैं । वैचित्रीमय लीला रस का आस्वादन करके आनन्द वैचित्री का अनुभव करते हैं।

गूढ़ से गूढ़, महान् तत्व की बात :—

श्रीकृष्ण में ईश्वर बुद्धि रखने से उनके प्रति आदर और गौरव की भावना हुये बिना रह नहीं सकती है । अतः प्रेम संकुचित हो जाता है । और मन को वांछित शान्ति प्राप्त नहीं होती है। **(ये अनुभव करके ही जानी जाती है)** यहाँ तक कि वैकुण्ठ धाम में भी यही दशा है । इसी कारण से रसिक प्रेमी भक्त वैकुण्ठ की इच्छा नहीं करता है ।

अतः गोपाल देव **(किशोर कृष्ण)** का आलिंगन व चुम्बन आदि का आनन्द ईश्वर बुद्धि से कैसे हो सकता है ? उनके साथ कैसे क्रीड़ा **(खेल)** सम्भव है ? क्योंकि प्रेम संकुचित हो जाता है । श्रीकृष्ण लीलायें अत्यन्त गोपनीय व गूढ़ हैं । ये तो ब्रज-वासियों के सदृश प्रेम द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं । वे लीलायें गोलोक धाम में भक्तों को आकर्षित करती रहती हैं। वैकुण्ठ में जहाँ भगवान् में जगदीश बुद्धि रहती है, इन लीलाओं का अनुभव नहीं हो सकता है ।

भगवान् के समस्त स्वरूप अभेद हैं । उपासकों को अपने-अपने भावानुसार पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं । ये स्वरूप अलग-अलग होने पर भी तत्वांश में एक ही हैं । उनका कोई एक स्वरूप प्रसन्न होने पर सब स्वरूप प्रसन्न हो जाते हैं ।

श्रीकृष्ण की समस्त लीलायें तर्क से अगोचर तथा वर्णनातीत हैं—प्रेम से भक्त ही अनुभव कर सकते हैं ।

भगवान् के समस्त विग्रहों में कृष्ण भाव रखना चाहिए । श्रीकृष्ण ईश्वर हैं यह समझकर उनसे डर लगता है । **(God fearing)** इस भय को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि उनसे **(श्रीकृष्ण से)** कोई लौकिक सम्बन्ध, कोई नाता जोड़ना पड़ेगा ।

ब्रज गोप व गोपियों जैसी दास व सेवा भाव से कृष्ण से प्रेम करना होग फिर नवधा भक्ति से अनुष्ठान करना होगा। श्रीकृष्ण की विविध प्रकार की ब्रज-लीलाओं का ध्यान तथा गान प्रधान करना होगा। प्यारे बन्धु का नाम संकीर्त्तन इसमें मुख्य है।

अपने रस के अनुकूल ही भक्तों का संग करना चाहिये। अतः ऐसा करने से प्रेम स्वतः सिद्ध प्रकट होता है। परन्तु उसे बिलकुल छिपा लेना चाहिये।

निर्जन ब्रज भूमि में तो निश्चय प्रेम प्राप्त होता है। यह **प्रेम प्राप्ति का साधन—कर्म, ज्ञान-योग आदि के साधनों से कतई मेल नहीं खाता है।** इस साधन का **दैन्य** ही एकमात्र **मूल्य** है।

जो सबसे अधिक सर्वगुण सम्पन्न होते हुये भी अपने को अत्यन्त असमर्थ, अधम तथा निर्बुद्धि मानते हैं, **दीन** कहलाते हैं। वास्तविक **दैन्य तो प्रेम की परिपक्व अवस्था** में ही होता है। जैसा कि कृष्ण वियोग में गोपियों का हुआ था। दैन्य जितना बढ़ता है, उतना ही निरन्तर प्रेम बढ़ता है। अर्थात् प्रेम और दैन्य एक दूसरे के कार्य और कारण हैं। अतः प्रेम का स्वरूप तो प्रेमी जानते हैं।

चित्त में आर्द्रता आना तथा कम्पादि भाव प्रकट होना प्रेम के लक्षण हैं।

समझने की बात यह है कि बिना प्रेम के नवधा भक्ति भी सच्चा सुख प्रदान नहीं कर सकती है। श्री राधिका जी साक्षात् प्रेममूर्ति हैं। वे भी प्रेम का वर्णन नहीं कर सकती हैं। अगर श्री राधा कहीं प्रेम का वर्णन करना प्रारम्भ कर दें तो इस वर्णन को सुनने वाला कोई नहीं है। क्या कृष्ण इस वर्णन को सुन सकते हैं? उनसे पूछ कर देखो। अतः अगर साधना करनी है, कृष्ण प्रेम पाना है तो जहाँ तक सम्भव हो सके ब्रज का निवास अवश्य करना चाहिये॥

प्रेमासार बड़ा अद्भुत है।

अदभुत कैसा प्रेमा सार।
गोपी जन आईं श्री यशुदा के आगार॥
फुसला फुसला करि के कान्हा करि लीयौ तैय्यार।
ठुमुक ठुमुक करि नाचन लागे भूलि गईं संसार॥
कृष्ण प्रेम का रूप निराला जाने गोपी सार।
गोपिन की कठपुतली बनके प्रेम का किया प्रसार॥
ब्रज गोपिन की आज्ञा मानें भले बने करतार।
पीड़ा और खड़ाऊँ लाँवै गोपी रहीं निहार॥
भगतन के बस में होकर के नाँचें दे दे तार।

नवधा भक्ति

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

चाहे **ब्राह्मण हो**—चाहे **सन्यासी हो**—चाहे **शूद्र हो क्यों न हो**—जो श्रीकृष्ण तत्त्ववेत्ता हैं, अर्थात् जिन्होंने श्रीकृष्ण को परम इष्ट मानकर उनकी शरणागति ग्रहण कर ली है, वे ही सर्व भावेन पूजनीय हैं—**श्रीकृष्ण भजन में जाति एवं कुलादि का कोई विचार नहीं है।**

जैसे रस विधान में कांसा स्वर्ण हो जाता है, उसी प्रकार दीक्षा अर्थात् श्रीभगवान के मन्त्रादि से श्रीगुरु द्वारा दीक्षित होने पर मनुष्य चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि किसी जाति का क्यों न हो, द्विजत्व अथवा ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है। उसकी ब्राह्मण जाति में ही गणना है। अतः भगवत् पथ में जाति कुल की आलोचना का कोई स्थान नहीं है।

धर्म के चार पैर हैं—**सत्य, तपस्या, शौच, दया** ॥

कलियुग के पाँच स्थान हैं—**द्यूत** (झूँठ), **मद्यपान** (मद), **स्त्रीसंग** (काम), **हिंसा** (बैर), gold सोना-धन (रजोगुण)।

श्रीकृष्ण साधारणतया चतुर्भुज स्वरूप से ही विराजते हैं। तो भी अपने प्रिय भक्तों को—निज जनों को सुख प्रदान करने के लिये तथा उनकी सेवायें प्राप्त करने के लिये, मनोहर द्विभुज रूप हो जाते हैं। श्रीवसुदेव देवकी के यहाँ चतुर्भुज रूप से प्राकट्य हुआ, परन्तु साथ ही साथ अपने निज जनों का सुख विधान करने के लिये योगमाया सहित द्विभुज रूप से श्रीयशोदा के यहाँ प्राकट्य किया। अतः द्विभुज स्वरूप अद्भुत विहार के समुद्र हैं। अतः अपने सेवकों के मनों को बराबर अपनी रूप माधुरी से हरण करते हैं। लीला माधुरी, वेणु माधुरी तथा प्रेम माधुरी से तो अपने सेवक व सेविका के हृदय में ही निवास करके साधना पथ के व्यर्थ प्रयासों को सदैव के लिये समाप्त करते हैं।

राम एवं कृष्ण में अन्तर होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। अभेद है। केवल नामान्तर एवं रूपान्तर मात्र है। श्री रघुनाथजी ही भावना से श्रीकृष्ण रूप हो जाते हैं। श्रीकृष्ण भी तदनुसार श्रीरामचन्द्र स्वरूप से दर्शन देते हैं। भक्त की भावना ही प्रमुख है।

जीव वही बुद्धिमान् है जो अपने इष्ट देव की प्राप्ति के लिये सब कुछ प्रयास करता है। उसका ही अनुष्ठान करता है। जहाँ कहीं अपने इष्टदेव की गंध भी हो, वहाँ परम एकान्तिक भक्त को भी बड़ा प्रेम करना चाहिये।

उत्तम भक्त का सच्चा आनन्द क्या है? भक्ति का श्रेष्ठ फल क्या है? श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों तथा उनके विहार का सदा दर्शन करे। ऐसे भक्तों को भगवान् कभी भी अकेला नहीं छोड़ते। स्वयं उसका योगक्षेम करते रहते हैं।

श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। पूर्णकाम हैं। महायोगेश्वर हैं। अपने इन गुणों को भी वे त्याग करके अपने भक्त-सेवक-निज जन की पराधीनता स्वीकार करते हैं। ऐसे भक्तों की कृष्ण सेवा ही उनकी भगवत्ता की चरम सीमा है।

श्रीकृष्ण ने अपनी समस्त महिमा तो अपनी मनोहर लीलाओं द्वारा प्रकट की। इस महिमा को एकमात्र प्रेम भरे हुये भक्त ही अपने हृदयों में अनुभव करते हैं। अन्य का बूता नहीं है।

श्री गोवर्धन परिक्रमा निष्काम भाव से देने में ही कृष्ण प्रेम प्राप्त होता है।

निम्न को कंठस्थ करके उच्च ध्वनि से एक रस के साथियों के साथ या अकेले ही ध्वनि से गायन करते परिक्रमा का आनन्द वैचित्र्यमय होता है—

गोवर्धन गिरे तुभ्यं गोपानां सर्वरक्षक।
नमस्ते देवरुपाय देवानां सुखदायिने॥

निम्न श्लोक (मंत्र) का भी उच्चध्वनि से कीर्त्तन करते-करते परिक्रमा देनी चाहिये। श्रीवन (वृन्दावन) की परिक्रमा में रस प्राप्ति इसी की ध्वनि से अवश्य, होती है। राधा रानी कृपा करती हैं।

नमः प्रियायै राधायै ब्रह्मणो वरदायिने।
सर्वेष्टफलरम्भाय राधाकृष्णाय मूर्तये॥

हे प्रिय! हे श्री राधिके। आपको नमस्कार है। आप दोनों मनोहर हैं—ब्रह्माजी को वर देने वाले हैं—श्री राधाकृष्ण स्वरूप हैं।

× × ×

राधे तेरे चरणों के दरसन पाऊँ।
रसना के सब स्वाद त्यागि कर तुझ में प्रीति लगाऊँ।
विसय वासना की गठरी में तुरत ही आगि लगाऊँ॥
रोम-रोम खिल जावे मेरा, प्रेम सुधा रस पाऊँ।
प्रतिक्षण तेरी सेवा में ही मन को खूब लगाऊँ॥
तेरा ही सुख मेरा सुख हो।
निज सुख-दुःख भुलि जाऊँ॥

× × ×

गुरु कृपा बिन काम नहीं चलता है। अतः गुरु सेवा से कृष्ण कृपा, कृष्ण प्रेम एवं कृष्ण भक्ति प्राप्त होती है।

प्रिया प्रिये ओंकार मध्य में पूर्ण छटा से आये थे।
तीन बार नीचे आ आ कर मुझको खूब छकाये थे।
हा-हा खाती अँसुवन भरि-भरि अपनी छटा दिखाये थे।
स्वप्न टूटने पर तो मैंने रोदन खूब मचाये थे।
दोनों का यह रूप अनूठा तब से बना सहारा है।
तब से अब तक बिरहागिन में मुझ को खूब जलाया है।
पापाजी की किरपा से ही यह सब दरसन पाया है।

लिखकर भेजा महिनों पहिले गुप्त रहस्य बताया था।
चार जनवरी सन बत्तीसा मेरा शुभ दिन आया था।

× × ×

पीताम्बर फहराते कर में वशी, गगन मार्ग में आये थे।
उस उड़ान की शोभा लखि कर, आँसू खूब बहाये थे।
जागि उठी तो देखा मैंने अँसुअन की बरसा धारा।
श्री गुरु की महा कृपा से यह सब खेल दिखाया था।
ग्यारह जनवरी सन बत्तीसा गुरु कृपा से पाया था।
पापा के चरणों में मैंने मस्तक खूब नवाया था।

× × ×

देख्यौ आज अनूठौ ठाठ।
झूला पर झूलत हैं दोनों गलबइयाँ डारे निज हाथ।
प्यारे प्यारी की चितवन से भयौ प्रफुल्लित मेरौ गात।
झोटा-झोटा देते-देते परमानन्द भयौ जौ प्राप्त।
एक कि चितवन एक की भ्रंगी दोनों को जब भयौ मिलाप।
एक रूप जब दोनों देखे मिटा दिया मेरौ भव ताप।
कौन है प्यारा कौन है प्यारी यह सब हुई बाहर की बात।
श्याम वर्ण को गौर देखकर भूलि गई मन का सब ताप।
दोनों में प्रथकत्व भाव का लेश मात्र भी रहा न भान।
दया करो हे प्यारे प्यारी, यही भाव स्थिर रखना।
अपने को ही भूल भुला कर चरणों में अर्पित करना॥

× × ×

प्रेम और आनन्द का सच्चा सुख यदि चाहु।
सब झगड़ों को त्याग कर कृष्ण शरण में जाहु॥
राधा रानी प्रेम की सत्य मूर्ति जान।
श्री कृष्ण आनन्द हैं ऐसा ही तू मान॥
झगड़े में तू क्यों पड़ी इनको प्राकृत जान।
सत्य समझ तू आज से इन्हें अप्राकृत मान॥
दारा सुत वैभव अनेक है सब मिथ्या मात्र।
युगल चरण की शरण ही सत्य सत्यता मात्र॥
हाड़ मांस मज्जा के ऊपर क्यों अब मन ललचाय।
सात्विक भोजन त्याग कर क्यों विष्टा का खाय॥
द्रव्य-द्रव्य तो है नहीं यह सब झूँठा राग।
युगल चरण ही द्रव्य हैं जीवन की यह लाग॥

द्रव वस्तु है खोखली जिसमें तू लवलीन।
राधे कृष्णा द्रवमयी हो जाओ तल्लीन ।।
वेद शास्त्र गीता पढ़ी नहीं मिला कोई तत्त्व।
युगल चरण की शरण बिनु मिटा न कभी ममत्व ।।
है प्रेम का पन्थ निराला।
मन में जब आवें नन्दलाला ।।

प्रेममयी श्री राधिका आनन्दमय श्री कृष्ण।
जहाँ प्रेम आनन्द है, तहाँ ही राधाकृष्ण ।।
प्रेम बिना आनन्द का कहीं नहीं अस्तित्व।
जैसे राधा के बिना कृष्ण तत्व शूनत्व ।।
राधा रानी प्रेम की जीवन रूपा जान।
श्री कृष्ण को समझ लो जीवन राधा प्रान ।।
महाभाव रूपा तू ही आनन्द रस रसराज।
सखी मंजरी सहचरी अनुपम बना समाज ।।
युगल सुक्ख में निहित है सबका सुक्ख महान।
सेवा में सब लगि परीं कबहुंन अपनौ ध्यान ।।
राधेकृष्णा तुम सुनो बिनती एक हमार।
मोहि बनाओ सेविका इसी सुखी परिवार ।।

× × ×

साधू संगति की नहीं भजन न निरजन कीन्ह।
कैसे पाओ कृष्ण को यदि हो तृष्णा लीन्ह ।।
भजन बिना निष्ठा नहीं निष्ठा बिनु रुचि होय।
रुचि बिनु आसक्ती नहीं भाव कहाँ से होय ।।
बिना भाव के प्रेम नहीं महाभाव रहै दूर।
भक्ती कैसे पाउगे, रहो धूर में धूर ।।

।। श्री कृष्ण तथा जीव सम्बन्ध ।।

जो कछु अनुभव मैं कियौ, गुरु कृपा से प्राप्त।
ताकौ वरणन मैं करूँ, केवल निज सुख मात्र ।।
सत्य झूँठ जानूँ नहीं, जानूँ एक ही बात।
बिना भजन श्री कृष्ण के, जीव कहाँ ठहरात ।।
जहाँ 'जीव' 'श्रीकृष्ण' हैं, जहाँ 'कृष्ण' 'वहाँ' जीव।
एक रूप दोनों भये, बड़ा ही भेद अजीब ।।

नित्य दास 'जीवात्मा', 'जीव शक्ति' श्री कृष्ण ।
सूर्य रूप श्री कृष्ण का, 'जीव' किरण है एक कण ।।
सूक्ष्मता को प्राप्त ये, 'जीव' किरण कण जान ।
'कृष्ण' जीव की भिन्नता, कैसे कोई मान ।।
सूर्य किरण कण को नहीं, कोई सूरज मान ।
वैसे ही श्री कृष्ण को जीव कभी मत मान ।।
दोनों एक ही रूप हैं, कहाँ भिन्नता योग ।
भिन्न-भिन्न दोनों रहें, यह अनुपम संयोग ।।
श्री कृष्ण माया चली, जीव छिद्र को देखि ।
भगवत् विस्मृति मात्र ही, छिद्र जीव का पेखि ।।
आवृत औ विक्षिप्त करि, जीव चित्तपट मीन ।
सुक्ख दुक्ख की पोटरी, माया भई परवीन ।।
जीव व्यवस्था देखिये, माया के आधीन ।
कैसे छटकारा मिलै, छिद्र न होइ प्रवीन ।।
अणु चेतन है जीव, अणु स्वतन्त्रता पाय ।
सीमित ही यह क्षेत्र है, जो करि सकै सहाय ।।
पूरन चेतन कृष्ण हैं, पूरन स्वतन्त्र रूप ।
मानवीय चिन्तन परे, ये है रूप अनूप ।।
स्वेच्छामय श्री कृष्ण हैं, माया बद्धित जीव ।
दोनों का यह भेद है मति पछितावे जीव ।।
कृष्ण स्मृति ज्ञान नहीं, माया चक्कर जानि ।
जीव स्थिति देखिये, अनुपम ये पहचानि ।।
गुरु कृष्ण की कृपा से, जीव प्रेम धन पाइ ।
माया चक्कर जब मिटै, जीव तभी बौराइ ।।

।। हरे कृष्ण ।।

सुन्दर समय सुहावना प्रकट भये गोपाल ।
इस प्राकट्य महान से भये वसुदेव निहाल ।।
कैसे वरणन मैं करूँ शोभा बड़ी महान ।
मैं प्रकृति का अंश हूँ ये हैं सरबस प्रान ।।
शंख हाथ में लग रहा दूजे चक्र विशाल ।
कमल पुष्प इक हाथ में गदा लिये गोपाल ।।
चरणन की छवि देखि कर भूल गये सब ज्ञान ।
चकित भये वसुदेव भी क्या क्या करूँ बखान ।।

वक्षस्थल श्री वत्स का चिन्ह रहा ललचाय ।
सुवरण रेखा देखि कर चित्त गया ठहराइ ॥
सुन्दर श्यामल वदन है मेघ समान पुनीत ।
या छवि का वरणन करूँ शोभा भव्य अतीत ॥
पीताम्बर फहरा रहा प्यारे तेरे गात ।
या छवि को मन में धरा बना सहारा मात ॥
घूँघट वाले केश से सूर्य किरण फहरात ।
कुण्डल मणि की कान्ति केशन में फहरात ॥
कमर बँधी है करधनी शोभा लड़ी दिखाय ।
दिव्य छवि को देख कर मेरा मन ललचाय ॥
बाजूबन्द बँधे हुये बांहें शोभा पाइ ।
कंकण कर में पहिन कर ये अद्‌भुत दिखलाय ॥
छटा अनोखी छिटकती अदभुत बालक रूप ।
छटा देखि वसुदेव जो तत्क्षण भये तदरूप ॥
देखा बालक को जभी, अति आश्चर्य महान ।
देखि रूप भगवान का भूलि गये सब मान ॥
खिले नेत्र वसुदेव के इस आनन्द को पाइ ।
रोम रोम तब खिल उठा परमानन्द अघाय ॥
ज्ञान हुआ वसुदेव को सनमुख ईश्वर पाय ।
सबरा भय जाता रहा विनती करन लगाय ॥
मेरी है यह याचना सदा बसे यह रूप ।
मनसा वाचा कर्मणा सेवा करूँ अनूप ॥

॥ राधा छवि ॥

मूल-देश वेंणी लसे स्यमन्तक मणि खूब ।
प्यारे ने यह प्राप्त की शंखचूड़ से ऊब ॥
अग्र भाग वेंणी बँधी सुवरन तारा जानि ।
बहु विधि रतनों से जड़े जाली रेशम आनि ॥
लाल पट्ट धारण किये बूँटौ बेलि सुहाय ।
मेघाम्बर सी ओढ़नी पहिनाई चतुराय ॥
रत्न जड़ित ही मेखला कटि अनूप छबि होत ।
सुवरन की सब घण्टियाँ रंग रंग में पोत ॥
पीठ भुजा कुच वक्ष में चन्दन लेपन कीन्ह ।
अगर कपूरा केशरा चंदन पंचम लीन्ह ॥

कामयंत्र शुभ तिलक की रचना की भरपूर ।
मसतक मांग सुहावनी भरदीनी सिंदूर ।।
लता पत्र अंकित किये शोभित भये कपोल ।
कसतूरी चंदन सहित अर्द्ध चन्द्र रहा बोल ।।
अंगिया लाल भली बनी मुक्ता रतन जड़ाय ।
राधा रानी लाड़िली कुच शोभा छवि छाय ।।
कमल कली की आकृति कर्ण फूल पहिराय ।
शोभा सुन्दर जो बनी कमलन में भ्रमराय ।।
मोती लड़ियाँ लटकती शालाकाय दोऊ कान ।
भली बनी हौ लाड़िली नन्दलाल के प्रान ।।
चिबुक बड़ो शोभामयी कसतूरी रस बिन्दु ।
भ्रमरा मनु बैठा हुआ कमल दलों पर बिन्दु ।।
नथली की शोभा बढ़ी मोती चमक लुभाय ।
देखि छटा इस रूप की लाला क्यों न लुभाइ ।।
दोनों नेत्रों की छटा कज्जल रेखा कीन ।
श्री कृष्ण हर्षित हुये नेत्र जलाशय मीन ।।
सुवरन का गलवन्द जो कण्ठ सुशोभित कीन ।
तीनों रेखा ढकि गईं कंठ हो चिन्ह विहीन ।।
प्यारे को यह नहि दिखै ताते यह सब कीन्ह ।
सखियन रचना रचि दई ये हैं परम प्रवीन ।।

श्री राधे ! श्री राधे ! श्री राधे !